ओ३म्

महिलाओं के ऋत्विक् कर्म अनधिकार विषयक उपग्रन्थ का उत्तरग्रन्थ

आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा

ओ३म्

महिलाओं के ऋत्विक् कर्म अनधिकार विषयक

उपग्रन्थ का उत्तरग्रन्थ
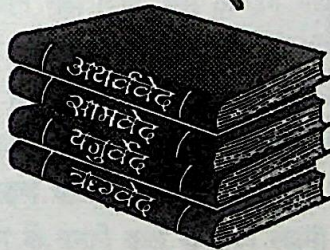
आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा

पाणिनि कन्या महाविद्यालय
वाराणसी

प्रकाशकः

श्री जिज्ञासु स्मारक पाणिनि कन्या महाविद्यालय

तुलसीपुर, वाराणसी-१० (उ०प्र०)

दूरभाषांक : ०५४२-२३६०३४०

●

प्रथम बार- ५००

माघ शुक्ल ५, वि.सं. २०६१

'वसन्त पंचमी'

१३ फरवरी, २००५ ई.

●

मूल्य - रु. १५/-

●

मुद्रकः-

शुभांकन

सीके. ६५/३५४, बड़ी पियरी

कबीरचौरा, वाराणसी दूरभाष : २४१२७५६, ६४१५४५१७८४

ओ३म्

ढाई अक्षर

नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः।

यजु. १६/२६॥

वेद की भाषा में **'उताहमस्मि संजया'**, ऋ. १०/१५६/३, अर्थात् मैं समाज की थूनी हूँ, का उद्घोष करने वाली नारी पर मध्यकाल से अनेकानेक शोषण होते रहे हैं। कर्मकाण्डियों की लक्ष्मण रेखा के कारण नारी चूल्हा धौंकने की धौंकनी ही बना दी गई है। परमात्मा ने जैसे मनुष्य से भिन्न प्राणियों को वेदादि ज्ञान नहीं दिया, वैसे ही उन महापण्डितों ने नारियों को वेद के ज्ञान तथा वेद विहित विधि विधानों से ऐसे वंचित कर दिया जैसे यही सृष्टि के कर्ता, धर्ता हैं। इस बीमारी से आर्यजगत् के महनीय संन्यासी भी न बच सके, उन्होंने भी **'महिलाओं को ऋत्विक् कर्म का अनधिकार है, वानप्रस्थ, संन्यास ग्रहण वर्जित है'** आदि संविधान बना दिये।

इस संविधान के बनाने वाले सम्मान्य स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती त्रिवेदतीर्थ हैं। उनका महिलाओं का ऋत्विक् कर्म अनधिकार विषयक कथन परोपकारी अंक ८ अगस्त २००४ में प्रकाशित हुआ, जिसका मैंने वेदादि शास्त्रों के आधार पर उत्तर दिया। वह भी उसी अंक में प्रकाशित हुआ है।

मेरे उत्तर के प्रतिरूप में श्रद्धेय स्वामी जी ने 'पत्रात्मक उपग्रन्थ ऋत्विक् कर्म में अधिकारी अनधिकारी' शीर्षक से सपरिशिष्ट २६ पृष्ठीय पुस्तिका प्रकाशित कर सभी आर्यसमाजों, संस्थाओं, गुरुकुलों आदि में प्रेषित की है तथा मेरे समीप भी प्रेषित की।

स्वामी जी के उपग्रन्थ को पढ़कर दुःखी, आश्चर्य चकित आर्यजनों ने **पू. आचार्या मेधा देवी जी** से प्रत्युत्तर का आग्रह किया। सुधीजनों के इस

आग्रह को आवश्यक समझकर पू. आचार्या जी की आज्ञा से यह **'उपग्रन्थ का उत्तरग्रन्थ'** मैं प्रकाशित कर रही हूँ। साथ में परोपकारी में प्रकाशित पूर्व उत्तर भी प्रकाशित किया जा रहा है।

खेद है पठन, पाठन के महनीय कार्य को छोड़ व्यर्थ की शंकाओ के उत्तर में समय अतिवाहित करना पड़ा। अच्छा होता किसी नवीन कार्य में यह समय लगता। अस्तु।

परमात्मा व पूजनीया आचार्या जी का आशीर्वाद ग्रहण करते हुये पुस्तक समर्पित है। आशा है अध्येताओं को सन्तुष्टि होगी।

पुस्तिका की पाण्डुलिपि तैयार करने तथा प्रूफ आदि संशोधन में प्रिय ब्रह्मचारिणी **ऋतु आर्या** का सहयोग विशेष उल्लेख्य है। उसे मेरा बहुत-बहुत साधुवाद। २५, २६, २७ - २००५ को सम्पन्न होने वाले वार्षिकोत्सव की अति व्यस्तता के समय में शुभांकन प्रेस के मालिक श्री प्रमोद कुमार जी ने त्वरित गति से मुद्रण किया है, उनका बहुत-बहुत धन्यवाद।

अलमति विस्तरेण

आप्तवाचिका

सूर्या देवी चतुर्वेदा

पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी-१०

दूरभाषांक- ०५४२-२३६०३४०

माघ शुक्ल ५, वि.सं. २०६१

'वसन्त पंचमी'

१३ फरवरी, २००५ ई.

ओ३म्

अनुक्रमः

महिलाओं के ऋत्विक् कर्म अनधिकार विषयक 'उपग्रन्थ' का 'उत्तरग्रन्थ'

अवैदिक अशास्त्रीय मान्यताओं का उत्तर प्रायः वाराणसीस्थ **पाणिनि कन्या महाविद्यालय** से दिया जाता है, यह सर्वविदित है। फिर **'महिलाओं को ऋत्विक् कर्म का अनधिकार'** कथन तो महिलाओं से सम्बन्धित विषय था, तदनु जब श्रद्धेय **'स्वामी मुनीश्वरानन्द जी सरस्वती' के 'शंका-समाधान'** शीर्षक में समाज के जागरूक वेदनिष्ठ सम्मान्य विद्वज्जनों ने 'कन्याओं, युवतियों, ब्रह्मचारिणियों आदि को यज्ञ कराने का अधिकार नहीं है', एवंभूत विचार पढ़े, तब उन प्रवरों ने वाराणसी विद्यालय में दूरभाष किया। उस समय **पू. प्राचार्या पं. मेधा देवी जी** एवं **मैं** द्रोणस्थली देहरादून के वार्षिकोत्सव में गये हुए थे, पुनः उन जनों ने देहरादून में प्राचार्या जी से सम्पर्क किया और स्वामी जी के वेदादि शास्त्रविरोधी सोपज्ञ विचारों से अवगत कराया।

ततः मान्य विद्वानों का आदर करते हुए "यज्ञों में महिलाओं का ब्रह्मा, ऋत्विक् आदि बनना, विभिन्न संस्कारों का कराना, गुरुकुल के ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, कन्याओं, युवतियों तथा अन्य विदुषी महिलाओं को और वानप्रस्थी, संन्यासियों को ऋत्विक् कर्म कराना' वर्जित है एवं कन्या आदि से ऋत्विक् कर्म कराने पर दोनों को नरक प्राप्त होता है" आदि स्वामी जी की मान्यताओं को वेद, दर्शन, स्मृति तथा श्रौतादि के आधार पर अवैदिक प्रमाणित करते हुए पुष्कल प्रमाणों से **कन्याओं आदि का ऋत्विक् कर्म वेदादि शास्त्र सिद्ध है,** यह उत्तर दिया गया, जो **'परोपकारी' अंक ८, अगस्त २००४ पृ० ३०१** में प्रकाशित हुआ। जिसे पढ़कर पत्रों की भीड़ लग गयी। ज्ञात होवे कि वे पत्र जन साधारण के ही नहीं, अपितु आर्य

जगत् में लब्धख्याति वयोवृद्ध सारस्वत मनीषियों के भी हैं, जिनकी जिह्वा वैदिक मान्यताओं के प्रतिपादन में अनथक लगी रहती है।

'वेद में कन्याओं का ब्रह्मा पद' शीर्षक से प्रकाशित मेरे उत्तर के प्रतिकथन में स्वामी जी ने पुनः सपरिशिष्ट २६ पृष्ठीय पत्रात्मक उपग्रन्थ लिख डाला और यत्र तत्र प्रेषित भी कर दिया। **विदित हो यह उपग्रन्थ वेद तथा महर्षि दयानन्द के मन्तव्य से सर्वथा विरुद्ध है व तर्कशून्य है।** मुझे यह कहने में भी यत् किंचित् संकोच नहीं है कि वे मेरे समाधानों का समुचित उत्तर नहीं दे सके, देते भी कैसे? गलत विचार तो गलत ही होता है। मात्र नरक भय को ही पिष्टपेषण के साथ विपुलता से व्याख्यात कर सके हैं। और भविष्य पुराण, दक्ष स्मृति आदि अमान्य ग्रन्थों के श्लोकों, व उद्धरणों की भरमार करते हुए पूर्वाग्रह युक्त 'नारियों को ऋत्विक् कर्म का अनधिकार है' इस कथन को पुनः-पुनः आवर्तित किया है।

साथ ही स्वामी जी ने मेरे समाधानों का 'स्वर, ताल से भटकी गायिका गावे आलपताल' पृ० १६, फिर सूर्या बेटी आंखें बन्द करके निर्णय ले लेना कि कन्या आदि को ऋत्विक्, पुरोहित बनने का अधिकार है, पूर्णतया शास्त्र विरुद्ध है, पृ० ६, मनुस्मृति के ११वें अध्याय के श्लोक ३६-३७ जिन्हें आचार्या सूर्या देवी जी ने प्रक्षिप्त बताया है, क्योंकि वे घुसपैठ में बाधक हैं परि. पृ. १, अक्ल कहाँ बेच खाई है, परि. पृ. ६, आदि वाक्यों द्वारा उपहास किया है। स्वामी जी के उपहास पर मुझे कुछ नहीं कहना, क्योंकि वे मुझसे वयः व विद्या दोनों में वृद्धतर हैं, पर इतना अवश्य है, मेरे द्वारा उद्धृत सभी प्रमाण शास्त्र सिद्ध हैं, वेदानुकूल हैं, यथार्थ हैं, इसमें सन्देह नहीं।

ब्रह्मचारिणी, कन्या, युवती आदि रूपा नारी को यज्ञ करने कराने का पूर्ण अधिकार है, इस वैदिक तथ्य में **'तौदी नामासि कन्या घृताची०** अथर्व. १०/४/२४, **'त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं०** ऋ. ७/३४/६, आदि मन्त्र पूर्व

समाधान में दिए गये हैं। जिनका अर्थ वेदार्थ की त्रिविध प्रक्रिया द्वारा किया गया है, वे वेदार्थ की यौगिक प्रक्रिया से सन्निविष्ट अर्थ हैं, जिन्हें पिष्टपेषण भय से पुनः यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उन अर्थों को मनमाना अर्थ कहना स्वामी जी की त्रिविध प्रक्रिया में अमान्यता द्योतित होती है। उपग्रन्थ में स्वामी जी ने पौनः पुन्य वृत्ति से अपने अभिमतानुसार **२ बातें प्रतिपादित की हैं-**

एक तो यह कि ऋत्विक् कर्म नारी के पवित्र जीवन की रक्षा में बाधक है अतः नारियों को ऋत्विक् कर्म वर्जित है।

दूसरी यह कि ऋत्विक् कर्म ब्राह्मणों का ही कर्म है, अतः नारियों को ऋत्विक् कर्म वर्जित है।

स्वामी जी के इन दोनों अभिमतों से नारियों के प्रति तुच्छ मानसिकता एवं ब्राह्मण जातिवादिता के प्रश्न उभर कर सामने आते हैं, जिनकी परख शास्त्रीय आधार पर आवश्यक है।

यहाँ यह भी चिन्तनीय है कि १९वीं शताब्दी से पूर्व कन्या, युवती, महिला आदि रूपों वाली नारी जाति को वेद का पढ़ना तो दूर, सामान्य पढ़ने पढ़ाने का भी कोई अधिकार नहीं था। ऐसी विषम परिस्थिति में महर्षि दयानन्द ने नारियों को पठन, पाठन का अधिकार दिया और वह अधिकार मात्र अक्षर बोध सामान्य पढ़ने, लिखने तक ही सीमित न रखा, अपितु वेद का ज्ञान प्राप्त करने का भी पूर्ण अधिकार दिया। वह पूर्ण अधिकार महर्षि ने **'यथेमां वाचं कल्याणीम् आवदानि जनेभ्यः,** यजु. २६/२ मन्त्र के **'जनेभ्यः'** पद से दिया। जो **जन शब्द स्त्री पुरुष** दोनों का वाचक है। जब इस मन्त्र के द्वारा स्त्रियों को वेद का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है, तब उन्हीं वेद मन्त्रों से कराई जाने वाली विधियाँ नारियों के लिए कैसे अनधिकृत समझी जा सकती हैं? यह एक प्रश्नात्मक तथ्य है।

इस प्रकार यदि नारियाँ **प्रातर्यजध्वमश्विना.** ऋ. ५/७७/२ आदि मन्त्रों के आधार पर पुरुषों की भांति यज्ञ कर सकती हैं तो वे यज्ञ करवा भी

सकती हैं, इसमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। नारियों से ऋत्विक् कर्म का अधिकार छीनना तथा अनधिकार में प्रमाण प्रस्तुत करना दुस्साहस मात्र है, वैदिक तथ्य नहीं। कर्मकाण्डवित् स्वामी जी ने अपने उपग्रन्थ में ऋत्विक् कर्म अनधिकार के जो प्रमाणभूत हेतु दिये हैं वे इस प्रकार हैं-

(१) १. **"सोमेन यक्ष्यमाणो ब्राह्मणनार्षेयानृत्विजो वृणीते यूनः। स्थविरान्वानूचाननूर्ध्ववाचोऽनंगहीनान्"।।**

आप.श्रौ.सू. १०/१/१।।

२. **अनति कृष्णः, अनति श्वेतः।**

बौधा.श्रौ.सू.(इसका पता नहीं है)

३. **ऋत्विजः-ब्रह्मणा ऋत्विज् आर्षेयामहान्तो युवानो बह्वपत्याः सपत्नीकाः।।**

वाराहश्रौ.सू. १/१/२३।।

इनका अर्थ लिखकर आगे लिखा- इन उपर्युक्त तीनों प्रमाणों के आधार पर, न तो गुरुकुलों के ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणियाँ ऋत्विक् होंगे और न ही वानप्रस्थी तथा संन्यासी ऋत्विक् होंगे, केवल प्रौढ़ गृहस्थ विद्वान् ही ऋत्विक् कर्म के अधिकारी हैं।

पृ० ४ ।।

(२) **ब्रह्मः - यो वै ब्राह्मणानामनूचानतमः स एव वीर्यवत्तमः। य एव वीर्यवत्तमः स्यात् स दक्षिणतः आसीत्।।**

शत.ब्रा. ४/६/६/५।।

जो वेदज्ञ, ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ अनूचानतम है, वह वीर्यवत्तम है। वही यज्ञ के दक्षिण में ब्रह्मा के आसन पर बैठे।

आप उक्त ब्राह्मण वचन के विपरीत नारी को किस ब्रह्मा के आसन पर बैठायेंगी।

पृ० ४।।

(३) १. **दर्श (अमावास्या) पूर्णमासाभ्यां यजेत स्वर्गकामः।**

आप.श्रौ.सू. ३/१४/८।।

अर्थात् स्वर्ग की कामना करने वाला व्यक्ति दर्शपूर्णमास याग करे।

स्वर्ग प्राप्ति के प्रलोभन से मनुष्य दर्शपूर्णमास याग करता है। ठीक इसी प्रकार **'न वै कन्या'** मनु. ११/३६ श्लोक में नरक प्राप्ति का भय दिखलाया गया है। जिससे यजमान श्लोक में वर्णित कन्यादिकों को यज्ञ में ऋत्विक् नहीं बनाता। किसी गृहस्थ विद्वान् को ऋत्विक् बनाकर शास्त्रानुसार यज्ञानुष्ठान कराता है। **यह नरक प्राप्ति का भय तो एक प्रकार से शास्त्र रक्षा की बाड़ है।** इसके न मानने से शास्त्र की सुरक्षा होना कठिन कार्य है। यहाँ नरक प्राप्ति से बस इतना ही अभिप्राय है।

पृ. २।।

२. ऋत्विक् वरण प्रक्रिया में मनु महाराज ने महिलाओं के वरण का निषेध किया है तद्यथा-

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तोसंस्कृतस्तथा।।

मनु. ११/३६।।

टीकाः मेधातिथिः - न स्त्रीणामार्त्विज्यं संभवः।
अग्निहोत्रग्रहणं सर्वकर्मणां होतृग्रहणं च
सर्वऋत्विजाम् प्रदर्शनार्थम्।।

अर्थात् स्त्रियों का ऋत्विक् कर्म उचित नहीं है................
........।

श्लोकार्थ - कन्या, युवती, अल्पविद्या वाला, मूर्ख, नासमझ अनेवंविद्, आर्त दुःखी, असंस्कृत अर्थात् यज्ञोपवीत रहित इनमें से कोई भी

अग्निहोत्रादि समस्त यज्ञों का होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्मा ऋत्विक् न हो।

पृ० ५।।

(४) पुनश्च-

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।।

मनु. १/८८।।

श्लोकार्थ के पश्चात् लिखा- इस श्लोक में मनु महाराज ने **याजनम्** पद का प्रयोग करके स्पष्ट संकेत दिया है, कि यज्ञ कराना, पढ़ाना और दान लेना ये ३ कर्म ब्राह्मण की आजीविका के लिए हैं।.....।

इस प्रकार के स्पष्ट शब्दों में वेद, आरण्यक, श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र और स्मृतियों में कहीं पर भी **नारी को ऋत्विक् कर्म करने का अधिकार नहीं दिया गया है।**

पृ० ५,६।।

(५) **ब्राह्मणा ऋत्विजो भक्षप्रतिषेधादितरयोः।**

कात्या.श्रौ.सू.१/२/८।।

वृत्ति - ब्राह्मणा एव ऋत्विजो भवेयुः। कुतः? क्षत्रियवैश्ययोर्भक्षप्रतिषेधात्।

यह सूत्र अधिकारवाद के लिए प्रकाश स्तम्भ है। इसके अनुसार ऋत्विक् कर्म में केवल गृहस्थ आर्य विद्वान् ब्राह्मण का ही अधिकार है। संन्यासी, वानप्रस्थ, विधुर महिला, गुरुकुलों के ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियों का ऋत्विक् कर्म कराने का अर्थात् यज्ञों में ब्रह्मा आदि ऋत्विक् बनकर यजमानों के यज्ञ सम्पन्न कराने का अधिकार नहीं है। यह बात सूत्र में विशेष जोर देकर कही गयी है।

पृ० १७।।

(६) **ब्राह्मणानामार्त्विज्यम्।**

आप.श्रौ.सू. २४/१/२१।।

भावार्थ - ऋत्विक् कर्म ब्राह्मणों के करने का है।

परि.पृ. ३,४।।

(७) महर्षि दयानन्द जी महाराज ने संस्कारविधि के सामान्य प्रकरण में पात्रलक्षण शीर्षक के नीचे अन्य बातों को लिखते हुए लिखा है-

अरत्निमात्राणि ब्रह्मयजमानहोतृपत्न्यासनानि।

अर्थात् यजमान का कर्त्तव्य है कि वह ब्रह्मा, होता आदि ऋत्विजों की पत्नियों के लिए यज्ञशाला से बाहर आसन आदि की समुचित व्यवस्था करे।

अन्ततोगत्वा निष्कर्ष यह है कि वेद श्रौतसूत्र............समस्त आर्ष साहित्य में ऋत्विक् कर्म के लिए गुरुकुलों के ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी, युवती, महिला, वानप्रस्थ और संन्यासी का कहीं पर भी नाम नहीं है। **इसलिए हमने.............. ब्रह्मचारिणी, कन्याओं, आचार्या आदि............द्वारा ऋत्विक् कर्म की इस दौड़धूप को घुसपैठ की संज्ञा दी है।**

परि.पृ० ६।।

स्वामी जी के अनधिकार समर्थक पूर्वोक्त वचनों की क्रमशः पड़ताल

(१) **क.** कन्या आदि के ऋत्विक् कर्म अनधिकार में स्वामी जी द्वारा उद्धृत आपस्तम्ब आदि श्रौत ग्रन्थों के प्रमाणों में **ब्राह्मण** शब्द आया है। जिसके अर्थ हैं-

विप्र = ब्राह्मणा ह वै विप्रासः।

जै.ब्रा. ३/८४/।।

देव = देवा विप्राः।

शत.ब्रा. ६/३/१/१६।।

विद्वान् = विद्वांसो हि देवाः।

शत.ब्रा. ७/३/३/१०।।

तात्पर्य हुआ ब्राह्मण संज्ञा विद्वान् की है। **इस प्रकार सिद्ध हुआ कि ऋत्विक् कर्म के अधिकारी विद्वान् होते हैं और वे विद्वान् गुरुकुल के ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, विदुषी महिला, वानप्रस्थ, गृहस्थ आदि कोई भी हो सकते हैं।** अतः इन श्रौतसूत्रों के वचनों से यह नहीं निकाला जा सकता कि मात्र गृहस्थ ही ऋत्विक् कर्म के अधिकारी होते हैं।

ख. जातकर्म संस्कार में जो महर्षि दयानन्द ने पुरोहित की पहिचान लिखी है-

धर्मात्मा शास्त्रोक्त विधि को पूर्ण रीति से जानने हारा विद्वान् सद्धर्मी, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूजनीय, सर्वोपकारी गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है।

इस कथन को सर्वत्र लागू नहीं किया जा सकता। यदि महर्षि का यही तात्पर्य होता, तो सामान्य प्रकरण में वरणविधि के अनन्तर **'ऋत्विजों का लक्षण'** शीर्षक से जो पुरोहित के लक्षण लिखे हैं-

'अच्छे विद्वान्, धार्मिक, जितेन्द्रिय, कर्म करने में कुशल, निर्लोभ, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मत वाले वेदवित् एक, दो, तीन अथवा चार का वरण करे'।

सं.सा.विधि पृ०.३०।।

इस लक्षण में **'गृहस्थ' शब्द जोड़ देते।** पर ऐसा महर्षि ने नहीं किया है अतः गृहस्थ की ही ऋत्विक् कर्म में अनिवार्यता नहीं मानी जा

सकती। अपितु यह तथ्य समक्ष आता है, कि यदि गृहस्थ ऋत्विक् होवे, तो उसे तत्-तत् गुणों से युक्त होना चाहिये। क्योंकि अन्यों की अपेक्षा गृहस्थ व्यक्ति प्रायः स्वसंबन्ध केन्द्रित अधिक होता है, अपवाद तो कहीं भी हो सकता है।

ग. दूसरी बात तीनों श्रौत सूत्रों के वचनों में पुरुष वाचक शब्द का उल्लेख नहीं है, **ब्राह्मण** शब्द आया है जो गुणवाचक है, वह न मात्र पुरुष का वाचक है, और न ही जातिवादी है। पुनः कैसे इन वचनों से कन्याओं का ऋत्विक् अनधिकार सिद्ध हो सकता है, व माना जा सकता है। सूत्रों में तथा टीका में **ब्राह्मण शब्द के साथ यूनः, युव, युवानः, एवं स्थविर शब्द आये हैं** उनसे समानतया पुरुष, स्त्री दोनों का ऋत्विक् कर्म सिद्ध होता है।

पुमान् स्त्रिया पा. १/२/६७ इस एकशेष विधायक सूत्र द्वारा तथा **युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः** पा. २/१/६६ सूत्र पर परिभाषित **'प्रातिपदिकग्रहणे लिंगविशिष्टस्यापि ग्रहणं भवति'** महाभा. २/१/६६ परिभाषा के न्याय से लिंगविशिष्ट का ग्रहण होने से, पुरुष की भांति युवती, कन्या, ब्रह्मचारिणी रूपा स्त्री का भी ऋत्विक् कर्म में अधिकार जाना जायेगा। यदि **ब्राह्मण** तथा **यूनः** आदि शब्दों द्वारा स्त्री का ग्रहण नहीं होगा तो इन सूत्रों के **ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च ब्राह्मणौ** तथा **युवा खलतिः=युवखलतिः** के सदृश **युवतिः जरती=युवजरती** लक्ष्य सिद्ध नहीं हो सकते एवं सूत्र और परिभाषा व्यर्थ होंगे। **अतः कन्याओं का ऋत्विक् कर्म में अधिकार सिद्ध है।** स्वामी जी इसमें क्या तर्क दे सकते हैं?

घ. स्वामी जी ने गृहस्थियों का ही ऋत्विक् कर्म में अधिकार है इस पूर्वाग्रह को सिद्ध करने के लिए वाराह श्रौतसूत्र का उद्धरण दिया है, उस उद्धरण में मजेदार बात यह की है, कि स्वामी जी ने अपनी ओर

से **'सपत्नीकाः'** शब्द जोड़ दिया है। जबकि वहाँ इस प्रकार का पाठ है-

ब्राह्मणा ऋत्विज आर्षेया महान्तो युवानो बस्वपत्याः।

वाराह श्रौ.सू. १/१/२३।।

एस.डी. कालेज, लाहौर, सन् १६३३

(२) **यो वै ब्राह्मणानां** आदि शतपथ वचन का हवाला देकर भी स्वामी जी ने यही सिद्ध किया है कि ब्रह्मा' ब्राह्मण होता है और व्यंग्यात्मक शैली में लिखा कि उक्त ब्राह्मण वचन के विपरीत नारी को कैसे ब्रह्मा के आसन पर आप बिठायेंगी। **स्वामी जी की यह थोथी गर्जना सर्वथा वेद विरुद्ध है। मुझे नारी को ब्रह्मा पद पर नहीं बिठाना है, परमेश्वर ने ही सृष्टि के आदि काल से नारी को ब्रह्मा पद पर बिठाया है।** उसके इस पद को छीनने का किसी को अधिकार नहीं। वेद कहता है-

स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।

ऋ.८/३३/१६।।

वेद के प्रमाण के रहते स्वामी जी को और कौन सा प्रमाण चाहिए? वैसे तो प्रस्तुत ब्राह्मण वचन से भी ऐसा द्योतित नहीं होता, कि पुरुष ही ब्रह्मा होवे।

ब्रह्मा कौन होवे? इस विषय में **परोपकारी अंक ६ सितम्बर २००४, पृ. ३४२** में पर्याप्त लिखा गया है, पुनरपि गोपथ का निम्न वचन द्रष्टव्य है, जिसमें ब्रह्मा की योग्यता बताते हुए कहा है-

तस्माद्यो ब्रह्मिष्ठः स्यात् तं ब्रह्माणं कुर्वीत।

गोपथ. २/१/३।।

अर्थात् जो अत्यन्त ब्रह्म ज्ञान वाला हो, उसको ब्रह्मा बनावे। ब्राह्मण के इस वचनानुसार सभी को ब्रह्मा बनने का अधिकार है। **ब्रह्मज्ञान वाले जो कोई भी स्त्री, पुरुष, कन्या, ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी आदि होंगे, वे ब्रह्मा पद के अधिकारी होंगे।** इस वचन में

ब्राह्मण वर्ण, गृहस्थ आश्रम आदि किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं लगाया है। एवंविध स्वामी जी द्वारा उद्धृत सम्पूर्ण वचन- कि ब्राह्मण को ही ब्रह्मा बनने का अधिकार है, ऐसा कथन करने वाले अर्वाचीन होने से मान्य नहीं हैं और न ही ब्राह्मण वचन के अनुसार ब्रह्मा को काले गोरे के बन्धन में बांधा जा सकता है।

(३) **क. दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत स्वर्गकामः,** आप. श्रौ.सू. ३/१४/८ के सादृश्य से **न वै कन्या,** मनु. ११/३६ श्लोक का व्याख्यान किया है, तथा उसका जो उद्‌देश्य बताया है वह कम हास्यास्पद नहीं है। इस सादृश्य में स्वामी जी का कहना है कि कन्यादिकों को ऋत्विक् कर्म से वर्जित कर एवं नरक प्राप्ति का भय दिखाकर शास्त्र की रक्षा की जा रही है। स्वामी जी के इस व्याख्यान से सुस्पष्ट है कि **नारी को ऋत्विक् कर्म से वर्जित करना मात्र शास्त्र रक्षा करना ही उद्‌देश्य है,** अन्य कोई प्रयोजन नहीं।

स्वामी जी के इस चिन्तन पर विद्वत् जन विचार कर सकते हैं, कि कितनी उत्तम 'लकीर के फकीर' के सदृश स्वामी जी की सोच है। भला बताइये? अनार्ष, अवैदिक प्रमाणों की सुरक्षा के लिए नारियों का ऋत्विक् कर्म में अनधिकार है इसकी सिद्धि के लिए स्वामी जी ने खोजकर के **'न वै कन्या'** आदि प्रमाण दिये और उनकी सुरक्षा में उपग्रन्थ उपहृत कर दिया।

मैं तो कहना चाहूँगी **'न वै कन्या'** आदि ही श्लोक नहीं, मनुस्मृति में बहुत से अवैदिक एतादृश श्लोक हैं, जिनकी सुरक्षा में आपको अपना शेष जीवन लगा देना चाहिए। क्योंकि जब स्वामी जी के लिए **'न वै कन्या'** प्रमाणभूत है, तो निम्न श्लोक भी प्रमाणभूत होंगे-

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः।।

मनु. ९/९४।।

अर्थात् शीघ्र धर्म को चाहता हुआ ३० वर्ष का पुरुष, १२ वर्ष की कन्या से तथा २४ वर्ष का पुरुष ८ वर्ष की मनोहारिणी कन्या से विवाह करे।

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया।
यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये।।

मनु. ५/२७।।

अर्थात् ब्राह्मणों की इच्छा हो और शास्त्रोक्त विधि के अनुसार यज्ञ के लिए अर्पित मांस हो, तथा प्राणों का संकट हो, तो मन्त्र से शुद्ध किए हुए मांस को खावे।

ख. मेरे द्वारा **'न वै कन्या'** श्लोक को प्रक्षिप्त बताने पर स्वामी जी ने मेरे कथन को घुसपैठ में बाधक बताया है। जबकि यह श्लोक प्रकरण विरुद्ध होने से प्रक्षिप्त ही ठहरता है। मनुस्मृति के १०वें अध्याय के अन्तिम श्लोक में एकादश अध्याय के विषय का उल्लेख किया गया है-

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम्।।

मनु. १०/१३१।।

अर्थात् यह चारों वर्णों की सम्पूर्ण कर्मविधि कही गई है, इसके उपरान्त शुभ प्रायश्चित्त विधि को कहूँगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मनु ने ११वें अध्याय में प्रायश्चित्त का कथन किया है। इतना ही नहीं इसी शैली से इस अध्याय के अन्त में विषय की पूर्णता का उल्लेख करके अग्रिम १२वें अध्याय के विषय का

भी निर्देश किया है-

एष वोऽभिहितः कृत्स्नः प्रायश्चित्तस्य निर्णयः।
निःश्रेयसं धर्मविधिं विप्रस्येमं निबोधत।।

मनु. ११/१४२।।

अर्थात् यह तुमसे सम्पूर्ण प्रायश्चित्त का निर्णय कहा, अब विद्वानों की इस निःश्रेयस् धर्मविधि को जानो।

एवंविध मनुस्मृति की अन्तः साक्षियों से यही ज्ञात होता है कि **'न वै कन्या'** तथा **'नरके हि पतन्त्येते'** श्लोक प्रक्षिप्त हैं। क्योंकि इनमें किसी भी प्रकार का प्रायश्चित्त प्रतिपादित नहीं है। साथ ही यह भी सुस्पष्ट हुआ, नारियों के ऋत्विक् कर्म अनधिकार में **'न वै कन्या'** आदि को प्रमाणभूत नहीं माना जा सकता।

ग. वेद में नारियों के ऋत्विक् कर्म कराने तथा उनके वरण किए जाने का स्पष्ट कथन है-

तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम्।।

अथर्व. ७/२०/४।।

अर्थात् **हे विश्ववारे** = सबके द्वारा वरणीय नारि, **तेन** = उस अपने कर्म व ज्ञान से, **नः** = हमारे, **यज्ञम्** = यज्ञ को, **पिपृहि** = पूर्ण करो और **सुभगे** = उत्तम ऐश्वर्य वाली तुम, **नः** = हमें, **सुवीरम् रयिम्** = अच्छे वीरों वाला धन, **धेहि** = धारण कराओ।

यहाँ विशिष्ट तथ्य यह है कि मन्त्र में **'विश्ववारे'** पद आया है जो **नारी के सबके द्वारा वरणीयत्व का कथन कर रहा है एवं 'यज्ञं पिपृहि' पद नारी यज्ञ को पूर्ण कराने वाली है,** यानी पूर्णाहुति पर्यन्त विधिवत् यज्ञ को सम्पन्न कराती है इसके द्योतक हैं। तात्पर्य हुआ नारी ऋत्विक् कर्म की पूर्ण अधिकारिणी है, यज्ञों की संचालन कर्त्री है। इतने सुस्पष्ट नारी के ऋत्विक् अधिकार को **'न वै कन्या'** प्रक्षिप्त श्लोक के

द्वारा झुठलाया नहीं जा सकता।

घ. प्राचीन ग्रन्थ व्योम संहिता से भी नारियों का ऋत्विक् कर्म ज्ञापित होता है -

आहुरप्युत्तमस्त्रीणां अधिकारं तु वैदिके।
यथोर्वशी यमी चैव शच्याद्याश्च तथा पराः।।

श्री माध्वा.कृ.ब्र.सू.पृ. ८४।।

अर्थात् उत्तम स्त्रियों को वैदिक कर्मकाण्ड में अधिकार है जैसे कि उर्वशी, यमी, शची इत्यादि प्राचीन काल में ऋषिकायें हुई हैं।

(४) **क. अध्यापनमध्ययनम्** मनु. १/२८ द्वारा ब्राह्मणों का ही यजन, याजन कर्म है, नारियों का नहीं। यह जो स्वामी जी ने प्रतिपादित किया है तथा महर्षि के नाम से जाति ब्राह्मणता की संस्तुति की है, वह भी महर्षि दयानन्द के कथन के नितान्त विपरीत है। महर्षि ने **"धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः०"** की व्याख्या करते हुए सुस्पष्ट शब्दों में लिखा है- **"जैसे पुरुष जिस-जिस वर्ण के योग्य होता है, वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था जाननी चाहिए।"**

सत्या. चतु. पृ. ८२।।

ख. यज्ञ करना और कराना आदि कर्म ब्राह्मण की आजीविका के लिए हैं स्वामी जी का यह प्रतिपादन भी वाक्छलयुक्त है। क्योंकि संस्कारविधि में इस श्लोक के अर्थ के प्रारम्भ में **पुरुष के साथ स्त्री का भी उल्लेख किया है,** यथा-

१. निष्कपट होके प्रीति से **पुरुष-पुरुषों को और स्त्री स्त्रियों को पढ़ावें,**
२. पूर्ण विद्या पढ़ें,
३. **अग्निहोत्रादि यज्ञ करें,**
४. **यज्ञ करावें,**

५. विद्या अथवा सुवर्ण आदि का सुपात्रों को दान देवें,
६. न्याय से धनोपार्जन करने वाले गृहस्थों से दान लेवें भी।

संस्का.वि.पृ. २७६।।

महर्षि दयानन्द ने प्रथम संख्या के अर्थ में **पुरुष तथा स्त्री दोनों का नाम लिया है** आगे के अर्थों में किसी का नाम नहीं लिया है, तो जैसे आगे के अर्थों में पुरुष का सम्बन्ध होगा वैसे ही स्त्री का भी सम्बन्ध होगा। एवंविध सामान्यरूप से **सभी स्त्री, पुरुषों को यज्ञ करने-कराने का अधिकार है**। महर्षि के **यज्ञ करावें इस कथन से स्त्रियों का ऋत्विक् कर्म डंके की चोट सिद्ध हैं** इसे स्वामी जी ही क्या, कोई भी नहीं नकार सकता। वाक्छल के द्वारा स्त्रियों का अनधिकार सिद्ध करना आहोपुरुषिका मात्र है।

(५,६) **ब्राह्मणा ऋत्विजो भक्षप्रतिषेधादितरयोः तथा ब्राह्मणानामार्त्विज्यम्** वचन भी अनधिकार सिद्ध करने में झांसेबाजी पूर्वक ही उद्धृत हैं। पुनः-पुनः ब्राह्मणों का ऋत्विक् कर्म है, इसी का जाप हुआ है। क्या स्त्रियाँ ब्राह्मण नहीं होतीं? होती ही हैं। महर्षि दयानन्द ने वर्णाश्रम व्यवस्था को बताते हुए स्त्रियों को भी ब्राह्मण वर्ण का कथन किया है-

ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया।

सत्या.चतु.पृ. ८३।।

महर्षि की इन पंक्तियों में नारी का ब्राह्मणत्व सुस्पष्ट है। स्वामी जी को ज्ञात होवे कि इस तरह जहाँ कहीं पर ब्राह्मणादि नाम लेकर सामान्यतया विधि आदि का निर्देश होता है, वहाँ पर पुरुष के साथ स्त्री का भी पाणिनि के **'पुमान् स्त्रिया'** पा. १/२/६७, सूत्र नियम से ग्रहण होता है। तभी तो वेदों में तथा अन्यत्र कहीं भी **पितरौ, पितरः** आदि पद जहाँ आते हैं, वहाँ माता, पिता, स्त्री, पुरुष दोनों का ग्रहण होता है।

(७) संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण में आये **"अरत्निमात्राणि ब्रह्मयजमान- होतृपत्न्यासनानि"** वचन को उद्धृत कर नारियों के ऋत्विक् कर्म का अनधिकार सिद्ध करना भी धोखाधड़ी ही है। इस वचन में तो ब्रह्मा आदि के आसनों के परिमाण की चर्चा है। स्वामी जी ने इस वचन से अनधिकार ही सिद्ध नहीं किया अपितु नारियों का आसन यज्ञशाला से बाहर होवे, यह सिद्ध करने के लिए "ऋत्विजों की पत्नियों के लिए यज्ञशाला से बाहर आसन आदि की समुचित व्यवस्था करें" यह एक और नई वंचनापूर्ण व्यवस्था दे डाली।

स्वामी जी के सम्पूर्ण नारी ऋत्विक् अनधिकार समर्थक वचन और पुस्तिका वैसे ही है, जैसे अनुभूतिस्वरूप महान् पण्डित के मुख से वृद्धावस्था में **'पुंसु'** के स्थान में **पुङ्क्षु** ऐसा अशुद्ध प्रयोग निकल गया, जिसकी सिद्धि में उसने सारस्वत व्याकरण ही रच डाला। इस प्रकार ब्रह्मचारिणियों के ऋत्विक् अनधिकार में **स्वामी मुनीश्वरानन्द जी का उपग्रन्थ प्रक्षिप्त तथा अमान्य, अवैदिक बातों का ही संग्रह मात्र है, यही कहा जा सकता है।**

स्वामी जी के अनधिकार समर्थक हेतु

आर्य जगत् के सम्मान्य स्वामी मुनीश्वरानन्द जी ने कन्या, युवती, ब्रह्मचारिणी आदि के ऋत्विक् कर्म अनधिकार में **'न वै कन्या' 'ब्राह्मणा ऋत्विजः'** आदि के साथ जो अन्य अनधिकार समर्थक कारण प्रस्तुत किये हैं, वे भी कम चौंकाने वाले नहीं हैं, जो प्रत्युत्तर सहित निम्न हैं-

१. ऋत्विक् कर्म नारी के पवित्र जीवन की रक्षा में बाधक हैं। इस सम्बन्ध में मनु महाराज कहते हैं कि-

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारी सन्दूषणानि षट्।।

मनु. २/१३।।

अर्थात् मद्यपान, दुर्जन संसर्ग, पति से अलग रहना......... स्त्रियों के छः दूषण हैं। ये छः दोष नारी के चारित्रिक पतन में प्रबल कारण हैं। इसीलिए नारी को ऋत्विक् कर्म करने का अधिकार नहीं दिया गया। यह सब कुछ नारी के चरित्र की सुरक्षा के लिए है, किसी दुर्भावना से नहीं।

पृ. ६।।

प्रत्युत्तर -

क. मनु के **'पानं दुर्जनसंसर्गः'** वचन के द्वारा ऋत्विक् कर्म अनधिकार सिद्ध करना वचन के विपरीत है। वचन में मात्र स्वभावगत, आचारगत दोषों को गिनाया गया है, यज्ञ कर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ स्वामी जी को यह भी ज्ञात होवे, कि महर्षि दयानन्द ने चतुर्थ समुल्लास के गृहाश्रम प्रकरण में यह श्लोक उद्धृत किया है, वहाँ उन्होंने इस श्लोक का अर्थ करते समय **"ये छः स्त्री को दूषित करने वाले दुर्गुण हैं"** यह पंक्ति लिखी है। वहीं आगे एक वाक्य लिखा है, जो स्वामी जी के अनधिकार समर्थक उपर्युक्त कथन की नींव को खोदने वाला है। महर्षि लिखते हैं-

"और ये पुरुषों के भी हैं।"

सत्या.चतु.पृ. १०३।।

तात्पर्य स्पष्ट है कि इन दुर्गुणों के कारण नारी को ऋत्विक् कर्म में अनधिकृत माना जायेगा तो इन दुर्गुणों के कारण पुरुष भी ऋत्विक् कर्म में नारीवत् सदैव अनधिकृत होगा। स्वामी जी महर्षि दयानन्द से ऊपर नहीं हो सकते।

ख. दूसरी बात ये दोष एक तरफ से आबालवृद्ध सभी स्त्री वर्ग में हों यह आवश्यक नहीं, अतः स्वामी जी का यह दोष दर्शन हेतु "नारियों के ऋत्विक् कर्म अनधिकार" का प्रमाण नहीं हो सकता। साथ ही यह भी निष्कर्ष निकला, कि इन दोषों के न रहने पर ऋत्विक् कर्म नारियों का अधिकृत ही माना जाएगा।"

ग. यदि चरित्र रक्षा ही ऋत्विक् कर्म में बाधक है और नारी की अपवित्रता का इतना भय है, तब तो निम्न सावधानियाँ बरतनी आवश्यक हैं-

१. नारी जहाँ घर में रहती है वहाँ किसी भी पुरुष का दर्शन, आवागमन आदि नहीं होना चाहिए।

२. नारियों के चलने फिरने, आने जाने की सड़कें, मार्ग आदि पृथक् होने चाहिए।

३. यातायात के साधन रिक्शा, टैम्पो, बस, रेलगाड़ियाँ, हवाई जहाज आदि सभी कुछ की व्यवस्था पृथक् होनी चाहिए।

४. हाट-बाजार भी पुरुषों से पृथक् नारियों के बनने चाहिए।

५. सरकारी तन्त्र में रहने वाली नारियों के कार्यालय आदि भी पृथक् होवें।

६. अन्य विभागों के ऑफिस आदि भी पुरुषों से अलग ही होने चाहिए।

इतना ही नहीं, एवंभूत नाना पृथक्ताओं का जोर-शोर से प्रश्न उपस्थित होगा।

(२) शास्त्र का उद्देश्य नारी की चरित्र रक्षा है, ऋत्विक् कर्म नहीं। चारित्रिक दृष्टि से नारी कितनी कोमल है इसे एक पंजाबी कवि के भावों में समझिये-

"नारी छुई मुई दे बूटे, हथ लग्गे तों मुरझान ए।

हथ लग्गे तो मुरझान ए, हथ लग्गे तों मुरझान ए।
नारी छुई मुई दे बूटे, हथ लग्गे तों मुरझान ए।"

पृ. १८।।

प्रत्यु.

क. स्वामी जी की इन पंक्तियों से स्वतः ही प्रति प्रश्नरूप उत्तर आता है कि यदि चरित्र रक्षा की बात न हो, **तो कन्या तथा युवती को ऋत्विक् कर्म करने का पूर्ण अधिकार है।** अधिकार में कोई बाधा नहीं है।

ख. यदि नारी का कोमलत्व अनधिकार में कारण होगा तो उसका वीरत्व भी ऋत्विक् कर्म अधिकार का हेतु होगा। स्मरण रहे! नारी जहाँ कोमल है वहाँ वीरांगना भी है। उसके वीरत्व को कवि के गौरवशाली शब्दों में किंचित् देखें-

पहचानो! पहचानो! हम हैं कौन भला?
पहचानो! हम हैं कौन।।
हम आर्य नारी हैं- हम आर्य नारी हैं ।
हम हैं गुलाब की कली मगर, दुश्मन की खातिर शूल भी हैं
हैं मित्रों के अनुकूल किन्तु, वैरी को चटाती धूल भी हैं।।
हम दुर्गा और भवानी हैं, हम झांसी वाली रानी हैं।........
हम आर्य नारी हैं- २ ....

भला बताइए नारी के इतने सुदृढ़ महिमामय वीरत्व के भाव कवि समाज में वर्त्तमान हैं, तब कैसे चारित्रिक दोष उसके ऋत्विक् कर्म के अनधिकार में आड़े आ सकता है?

ग. मान लिया नारी कोमल है, फिर उससे भोजन बनाने, वस्त्र साफ कराने, झाड़ू आदि लगाने का कार्य क्यों लिया जाता है, उसे सबसे

अन्त में भोजन करने को क्यों बाध्य होना पड़ता है? जैसे कोमलता के कारण ऋत्विक् कर्म में अनधिकृत है, वैसे ही भोजन बनाने आदि में भी कोमलता के कारण अनधिकृत मानना चाहिए? ये कर्म भी तो उसके लिए घातक होंगे। अतः स्वामी जी का 'हथ लग्गे तो मुरझान ए' का घनपाठ गले उतरने वाला नहीं हैं।

(३) ऋत्विक् कर्म अनधिकार में नारी की स्वेच्छाचारिता का स्वामी जी का तीसरा कारण–

प्राकाम्ये वर्त्तमाना तु स्नेहान्न तु निवारिता।
अवश्या सा भवेत् पश्चात् यथा व्याधिरुपेक्षिता।।

दक्ष.स्मृ ४/२।।

भावार्थ– यदि पत्नी स्वेच्छाचारिणी है .... पति के वश से बाहर हो जाती है।

ब्रह्मचर्येपि वर्त्तन्त्याः साध्व्या ह्यपि च भूपते।
हृद्यं हि पुरुषं दृष्ट्वा.................।।

भविष्य पु.ब्राह्म. १/७३/२८।।

भावार्थ– यद्यपि यह पुराण का वचन है तथापि हे राजन्! यह अनुभव सिद्ध है कि ब्रह्मचर्य व्रत से रहने वाली साध्वी भी सुन्दर पुरुष को देखकर ....।

वास्तव में सत्य तो यह है कि नारी का ऋत्विक् कर्म करना उसके उज्ज्वल चरित्र पर प्रेय रूप में प्रच्छन्न आक्रमण है, इसी बात को ध्यान में रखते हुए दूरदर्शी महाराज मनु ने याजनम् ऋत्विक् कर्म करने का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही दिया है।

प्रत्यु.

क. प्रथम तथ्य तो यह है कि दोनों ही श्लोकात्मक कथन गृहस्थ

जीवन से सम्बन्धित हैं, जिन्हें स्वामी जी ने नारियों के ऋत्विक् कर्म अनधिकार में प्रमाणभूत माना है। प्रथम श्लोक में पति पत्नी के पारस्परिक बर्त्ताव की चर्चा है, और दूसरे श्लोक में विवाह वरण की चर्चा है, विस्तार से वहीं देखा जा सकता हैं। स्वामी जी की कर्मकाण्डवित्ता धन्य है, जिसके कारण ब्रह्मचारिणी, कन्या आदि का ऋत्विक् कर्म अनधिकार सिद्ध किया है।

ख. ये दोनों वचन प्रमाण योग्य नहीं है। महर्षि दयानन्द ने प्रक्षिप्त श्लोक वर्जित मनुस्मृति के अतिरिक्त, अन्य स्मृतियों को प्रामाणिक नहीं माना है, यथा–

'स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति.... .....कपोल कल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं।'

सत्या.तृ.पृ. ६६।।

महर्षि की इन पंक्तियों से सिद्ध है कि दक्ष स्मृति प्रमाण योग्य नहीं है। यदि दक्षस्मृति का यह श्लोक प्रामाणिक होगा, तो निम्न श्लोक का भी प्रमाण अवश्य मानना होगा–

मृते भर्त्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनम्।
सा भवेत् तु शुभाचारा स्वर्गलोके महीयते।।

दक्ष.स्मृ. ४/१६।।

अर्थात् जो नारी पति के मरने पर अग्नि में प्रवेश कर जाती है वह पवित्र आचार वाली तथा स्वर्ग लोक में महानता को प्राप्त होती है।

किंचित् विचार करें स्वामी जी, क्या यह श्लोक मानने योग्य है? यदि नहीं तो पूर्व वाला आपका प्रमाण भी अमान्य है।

ग. भविष्य पुराण का वचन भी अप्रामाणिक होने से उपादेय नहीं। महर्षि ने **'सब पुराण, सब उपपुराण'** सत्या.तृ.पृ. ६६ पर पठन,

पाठन विधि प्रकरण में इन शब्दों के द्वारा पुराणों को भी मिथ्या ग्रन्थ बताया है।

मुझे तो महदाश्चर्य है कि आर्य जगत् के मूर्धन्य स्वामी जी पुराण का प्रमाण दें, वो भी इतना बीभत्स जिसे पढ़कर कोई भी लज्जाविष्ट हो सकता है। संन्यस्त वेश में रहने वाले, ऐसे अप्रमाणिक श्लोकों को प्रस्तुत करें शोचनीय है।

दूसरी बात श्लोक में **'हृद्यं पुरुषम्'** कहा है। क्या ऋत्विक् कर्म में बैठते ही सभी हृद्य पुरुष हो जाते हैं? सब विधि विधान छोड़कर उनमें ही रम जाते हैं? बतायें स्वामी जी? यज्ञ करना- कराना तो श्रेष्ठ कर्म है **'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'** शत. ब्रा.१/७/१/५, इस वचन के द्वारा यज्ञ का श्रेष्ठत्व सभी जानते मानते हैं। पुनः यज्ञ कराने में दुश्चरित्रता का प्रश्न क्यों? दूसरी बात जिसे बिगड़ना होगा, वह तो कहीं भी बिगड़ेगा, यज्ञ हो अथवा संन्यासी आदि का ही सान्निध्य क्यों न हो। बिगड़ने की बात स्त्री की ही नहीं, पुरुषों की भी सम्भव है, अतः दुश्चरित्रता का दोष लगाकर तथा अब्राह्मण बताकर कन्याओं व ब्रह्मचारिणियों को आप ऋत्विक् कर्म से वंचित नहीं कर सकते। ब्राह्मण-ब्राह्मण उच्चारण कर जिनका आप ऋत्विक् कर्म सिद्ध कर रहे हैं, प्रतीत होता है, जन्म जन्मान्तर से वे अधिकार प्राप्त हैं। उन अधिकार प्राप्त पुरुषरूप ब्राह्मणों के विषय में वेद क्या कहता है, अन्य वेदविद् क्या कहते हैं, इस पर भी दृष्टिपात करें। पुरुष हृदय के लिबलिबेपन को व्यक्त करने वाले वेद के शब्द हैं-

निवर्त्तस्व हृदयं तप्यते मे।

ऋ. १०/९५/१७।।

अर्थात् मेरा हृदय तुम्हारे कारण पीड़ित होता है, अतः तू दूर जा। मन्त्र में पुरुष के दुर्बल हृदय का आख्यान है। जिस दूषितता को

स्वामी जी नारी पर मढ़कर सन्तुष्ट होना चाहते हैं। आखिर दुश्चरित्रता कराता कौन है? दुश्चरित्रता को बढ़ावा कौन देता है? अगुवा कौन बनता है? इसे मुझे बताने की आवश्यकता नहीं है। महाभाष्यकार पतंजलि पुरुषों के मानसिक स्तर का हवाला देते हुए लिखते हैं–

खेदात् स्त्रीषु प्रवृत्तिर्भवति, समानश्च खेदविगमो गम्यायां चागम्यायां च, तत्र नियमः क्रियते–इयं गम्येयमगम्येति।।

महाभा.नवा. पृ.४६।।

अर्थात् **राग = अनुराग** के कारण स्त्रियों में प्रवृत्ति होती है, वह प्रवृत्ति किनकी होती है, इसे स्पष्ट करते हुए महाभाष्य के **'तत्वालोक'** टीकाकार **श्री रूद्रधर शर्मा झा** लिखते हैं–

स्त्रीष्विति पुरुषाणामिति शेषः।

महाभा.नवा.पृ. ४६।।

तात्पर्य हुआ पुरुषों की स्त्रियों में प्रवृत्ति होती है और यह **खेद = रागभूत प्रवृत्ति** गम्या, अगम्या दोनों प्रकार की स्त्रियों में पुरुष की होती है, तब नियम किया जाता है, यह पुरुष की गम्या है, यह अगम्या।

अब स्वामी जी स्वयं निश्चित कर लें, कि स्वेच्छाचारिता का जनक कौन है? पुराणकार की अपेक्षा महाभाष्यकार की बात मूल्यवान् है। राजा अश्वपति ने अपने राज्य की उत्तमता घोषित करते हुए, जो कहा है, वह भी न्यून महत्व का नहीं है, यथा–

न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।

छान्दो. ५/११/५।।

अर्थात् जब स्वेच्छाचारी ही नहीं है तो स्वेच्छाचारिणी का प्रश्न ही नहीं उठता। राजा अश्वपति के इस कथन से भी सुविदित है कि स्वेच्छाचारिता आती कहाँ से है। **जब स्वेच्छाचारिता का स्रोत प्राप्त हो**

गया पुनश्च किसी को भी यानी स्त्री को ही क्या पुरुष को भी ऋत्विक् कर्म नहीं करना चाहिये और यज्ञादि कर्मों से ही हाथ धो लेने चाहिये। स्वामी जी की दृष्टि से यही तथ्य सामने आता है।

ङ. महाभारत शान्तिपर्व में भी पुरुष को ही स्वेच्छाचारिता का अगुवा बताया है-

नापराधोऽस्ति नारीणां नर एवापराध्यति।

शान्ति २/६६/४६।।

अर्थात् नारियों का अपराध नहीं होता, पुरुष ही अपराध करवाता है।

इन उपर्युक्त तथ्यों से यही निष्कर्ष निकलता है कि नारियाँ स्वेच्छाचारिणी नहीं होतीं। जब वे स्वेच्छाचारिणी नहीं हैं, तब स्पष्ट हो गया कि उन्हें ऋत्विक् कर्म से अनधिकृत भी नहीं किया जा सकता। मैं समझती हूँ कि नारियों के ऋत्विक् कर्म करने में स्वेच्छाचारिता का स्वामी जी को जो भय है वह उपर्युक्त तथ्यों से मिट जाना चाहिये।

(४) ब्रह्मचारिणी, कन्याओं और अपने स्वयं के चरित्र की रक्षा के लिए जिस **'न वै कन्या'** को आप प्रक्षिप्त कहती हैं, उसे एक जागरूक सुरक्षाकर्मी पहरेदार समझिए।

पृ.२०।।

प्रत्यु.

क. 'न वै कन्या' हमारी सुरक्षा का पहरेदार नहीं हो सकता, अपितु गर्त्त में ले जाने वाली खाई के सदृश है। यदि आपकी आज्ञानुसार ऋत्विक् कर्म नारियाँ नहीं करेंगी, तो वेद में कही गई निम्न सूक्ति कैसे सार्थक समझी जायेगी? वेद कहता है-

यज्ञस्य केतुः।

ऋ. १/११३/१९।।

अर्थात् नारी **यज्ञस्य = यज्ञ की, केतुः = पताका** है।

ख. महर्षि दयानन्द ने ब्रह्मचारिणी कन्या को यज्ञानुष्ठात्री बताया है। यजुर्वेद ६/२५ मन्त्र के **'होत्राः'** पद का अर्थ करते हुए लिखा है-

होत्राः = हवनकर्मानुष्ठात्र्यः।

इसी प्रकार पदार्थ में लिखा- अग्निहोत्रादि का अनुष्ठान करने वाली हैं।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द की दृष्टि में कन्या, ब्रह्मचारिणी आदि रूपों वाली नारी पूर्णतः ऋत्विक् कर्म में अधिकृत है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

स्वामी जी का नरक दर्शन

१. स्वामी जी ने सम्पूर्ण उपग्रन्थ में ब्रह्मचारिणी आदि नारियों द्वारा यज्ञ कराने से नरक उत्पन्न होता है ऐसा लिखा है, उसकी पुष्टि में **सुभाषितरत्नभाण्डागारम्** का निम्न श्लोक उद्धृत किया है -

क्रोशन्तः शिशवः सवारिसदनं, पंकावृतं चांगणम्।
शय्या दंशवती च रूक्षमशनं, धूमेन पूर्णं गृहम्।।
भार्या निष्ठुरभाषिणी प्रभुरपि, क्रोधेन पूर्णः सदा।
स्नानं शीतलवारिणा हि सततं, धिग् धिग् गृहस्थाश्रमः।।

इस श्लोक का अर्थ लिखकर आगे लिखा- कि अब आपकी समझ में आ जायेगा, यज्ञ कराने के लिए कन्या को ऋत्विक् बनाकर यज्ञ करने वाले यजमान और यज्ञ कराने वाली कन्या को किस प्रकार नरक प्राप्ति होगी, यजमान का अपयश होगा।

पृ.२२।।

प्रत्यु.

क. स्वामी जी का नरक जताने वाला यह उद्धरण **'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा'** के सदृश है। श्लोक के अन्तिम चरण में **'गृहस्थाश्रमः'** शब्द पठित है, जिससे स्पष्ट है कि इस श्लोक में साधनहीन गृहस्थ आश्रम की परिस्थिति का निदर्शन है। स्वामी जी को क्या कहा जा सकता है? उनकी अपनी परख है, अतः उन्होंने ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी आदि द्वारा यज्ञ कराने पर, कैसा नरक होता है, इसके बयान में **'क्रोशन्तः शिशवः'** श्लोक को फिट कर दिया। बस बिडम्बना ही है।

ख. **'क्रोशन्तः शिशवः'** श्लोक जहाँ गृहस्थ आश्रम की विपन्नावस्था को द्योतित करता है, वहीं गृहस्थ आश्रम की श्रेष्ठता, सम्पन्नता को प्रकट करने वाला निम्न श्लोक भी उसके पूर्व में पठित है, श्लोक है-

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता न दुर्भाषिणी।
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापरा सेवकाः।
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे।
साधो संगमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः।।

सुभाषित रत्न भा. पृ. ८६, चाणक्य नी.सा. १२/१।।

अर्थात् जहाँ आनन्द से पूर्ण घर और बच्चे बुद्धिमान्, मिष्टभाषिणी नारी, अच्छे मित्र, परिश्रम का धन, पति पत्नी का परस्पर स्नेह, आज्ञाकारी सेवक होते हैं तथा जिस गृह में प्रतिदिन आतिथ्य होता है, परमात्मा की उपासना होती है, उत्तम भोजन होता है और सतत साधु सज्जन जनों का सत्संग होता है, वह गृहस्थ आश्रम निश्चय से धन्य होता है।

यदि स्वामी जी का पूर्व श्लोक ब्रह्मचारिणी, कन्याओं के ऋत्विक् कर्म से नरक होता है इसका द्योतक है, तो **'सानन्दं सदनम्'** श्लोक

ब्रह्मचारिणी आदि के द्वारा ऋत्विक् कर्म कराने पर स्वर्ग उत्पन्न होता है, इसका भी द्योतक समझा ही जायेगा। ततः कन्याओं को ऋत्विक् कर्म कराना ही चाहिए स्वर्ग की उपलब्धि के लिए। वैसे तो पूर्व श्लोक में न नरक का ग्रहण है और न ही **'सानन्दं सदनम्'** में स्वर्ग का ग्रहण है, यह तो स्वामी जी का ही अद्भुत चिन्तन है, जिससे उन्होंने नरक का दर्शन कराया है।

तुष्यन्तु जनाः न्याय से स्वामी जी का कथन मान भी लिया जाये कि कन्याओं के ऋत्विक् कर्म कराने पर नरक होता है तो भी सन्देह उठता है। क्योंकि स्वामी जी के अनुसार बच्चे रोते चिल्लाते हैं, घर गन्दे पानी से भरे रहते हैं, आंगन कीचड़ पूर्ण होते हैं, खटमल से भरी खुरेरी, चारपाई, मच्छरों का आतंक, रूखा भोजन, धुएं भरा घर, कर्कश पत्नी, दुर्भावग्रस्त पति आदि से युक्त गृहस्थ आश्रम होता है वह साक्षात् नरकधाम हो जाता हैं। तो मैं पूछना चाहती हूँ जहाँ ब्रह्मचारिणियों ने यज्ञ नहीं कराया, वहाँ क्यों **'क्रोशन्तः शिशवः'** वाली दशा है? कितने ही प्रायः ऐसे गृह, गाँव एवं शहर के शहर हैं, जिन्होंने यज्ञ तो क्या किया कराया होगा, यज्ञ का नाम तक नहीं जानते, वहाँ रोने चिल्लाने की स्थिति क्यों है?

सम्प्रति जो नारियाँ यज्ञ कराने की बात दूर, यज्ञ कर भी नहीं रही हैं, यज्ञ कराते देख भी नहीं रही हैं, वे क्यों अपवित्र हैं? यह भी उत्तरणीय प्रश्न है।

इन प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य से निष्कर्ष यही निकलता है कि कन्याओं का ऋत्विक् कर्म नरक प्राप्ति का कारण नहीं है, और न ही दुश्चरित्रता का निमित्त है।

२. इसी प्रकार से आचार्या प्रज्ञा जी के ब्रह्मा बनकर यज्ञ कराने की गति है। जहाँ-जहाँ उन्होंने यज्ञ करवाये वहाँ-वहाँ उनका यश या

अपयश यह बात आप स्वयं जाकर देख आइये। हमने तो केवल बहुत वर्ष पहले कोटा राजस्थान में देखा था, लोगों में कानाफूसी होती थी।

प्रत्यु.

क. स्वामी जी का धैर्य अत्यन्त सराहनीय है, जितनी दाद दी जाये न्यून है कि अब तक **पू० आचार्या डा० प्रज्ञा देवी जी** के द्वारा यज्ञ कराने पर जो नरक हुआ उसे पचाये बैठे रहे। बढ़िया तो तब होता कि पू. आचार्या जी के जीवन काल में ही उनके ऋत्विक् कर्म कराने से उत्पन्न नरक की एवं ततः हुई कानाफूसी को उद्घाटित करते, पुनः जब वे ही इन पंक्तियों की यथार्थता सिद्ध करतीं, जिससे ऋत्विक् कर्म अनधिकार समर्थक उपग्रन्थ लिखने एवं ऋत्विक् कर्म के निषेध का कथन करने का कोई साहस ही न कर पाता।

स्वामी जी को विदित हो उनकी इन पंक्तियों ने आर्यजगत् के उस गौरव को ठेस पहुँचाई है, जिस पर आर्यजगत् फूला रहता है कि सुधारवादी संस्थाओं में आर्य समाज ही ऐसी संस्था है, जिसने नारियों को पढ़ने पढ़ाने के साथ यज्ञ करने कराने का अधिकार दिया है। पू. आचार्या जी के कार्य को आर्यजगत् कभी विस्मृत नहीं कर सकता। सम्पूर्ण विश्व में बहुत लम्बे अन्तराल के पश्चात् २०वीं सदी में वेद, व्याकरण एवं कर्मकाण्डविदा एक मात्र विदुषीमणि **पू. आचार्या डा० प्रज्ञा देवी जी** हुईं जिन्होंने वेद एवं **महर्षि** के **नवपदी = चतुर्वेदोपवेदव्याकरणादिशिक्षायुता,** ऋ. १/१६४/४१, **होत्राः = हवनकर्मानुष्ठात्र्यः,** यजु. ६/२५ आदि कथनों को प्रयोगात्मक रूप दिया। उनके कार्य के अनुकरण की परम्परा आज सर्वत्र है। अनगिनत परिवार हैं जहाँ उनके द्वारा यज्ञ कराने से बिखरे परिवार जुड़े हैं। **'सानन्दं सदनम्'** का पूरा-पूरा दृश्य गृहों में बना और आज भी है। यदि स्वामी जी सूची चाहें, तो प्रेषित की जा सकती है।

आचार्या जी के यज्ञ कराने के संबन्ध में स्वामी जी द्वारा लिखित पूर्वोक्त पंक्तियों के अनुसार कोटा निवासी सम्मान्य **श्री वरुण मुनि जी** लेखक परिषद् के आयोजक. पूर्व नाम **रामकृष्ण आर्य** आदि विद्वानों से नवम्बर १९, २०, २१, २००४ में सम्पन्न हुए ऋषि मेले, अजमेर में पूछा, जहाँ सम्मान्य **डा० भवानी लाल भारतीय जी** भी थे कि आप बतावें कि **पू. आचार्या डा० प्रज्ञा देवी जी** द्वारा कोटा में यज्ञ कराने से क्या-क्या नरक हुआ? इस वाक्य को सुनते ही मत्था ठोंकने लगे और इन अविचारित बातों पर हँसे भी। मुझे तो इस सम्बन्ध में इतना ही निवेदन करना है कि स्वामी जी अपनी इन पंक्तियों पर किंचित् विचार करें।

स्वामी जी का वदतो व्याघात

स्वामी जी एक ओर तो यह लिखते हैं कि स्त्रियों के यज्ञाधिकार का हम सर्वदा समर्थन करते आये हैं, पृ.-१९, २ आदि पर। दूसरी ओर सम्पूर्ण पुस्तिका में उनके ऋत्विक् कर्म को शास्त्र विरुद्ध तथा आर्य समाज के सिद्धान्त विरुद्ध बताया है, आपका यह द्वैध चिन्तन वदतो व्याघात ही तो है। स्वामी जी का यह कथन वैसे ही निरर्थक है, जैसे कोई कहे अमुक व्यक्ति पानी पी सकता है पर पिला नहीं सकता, अरे? जो पियेगा वह पिलायेगा भी। अतः जो कन्या यज्ञ कर सकती है वह करा भी सकती है। जीवन में कोई भी कर्म वही सीखा सिखाया जाता है, जो दूसरे के लिए भी उपयोगी हो सके। यजुर्वेद ५/२६ में यज्ञानुष्ठान के हेतु बताते हुए पुरुष के लिए निर्देश है, वैसे नारी को भी करना चाहिए इसका आदेश देते हुए महर्षि अन्वय में लिखते हैं-

हे नारि! त्वमप्येतत् सर्वमेवमेव समाचार।

यजु. ५/२६॥

अर्थात् हे नारि! तू भी यह सब इसी प्रकार कर।

जिस कर्म को पूर्व में व्यक्ति कर चुका होता है, उसे ही बाद में करने में सफल होता है जिस कर्म को पूर्व में किया ही न हो, वह उत्तरकाल में भी सम्पन्न नहीं कराया जा सकता। जैसे अध्ययनकाल में बालिकायें भोजन ग्रहण तो करती हैं, पर प्रायः बनाती नहीं हैं, अतः वे अग्रिम जीवन में पदे-पदे भोजन निर्माण जैसे सामान्य कर्म में लड़खड़ाती हैं, वैसे यदि कन्यायें ऋत्विक् कर्म नहीं करायेंगी, तो आगे कैसे यज्ञादि का अनुष्ठान कर सकेंगी तथा महर्षि का पूर्वोक्त कथन पूर्ण हो सकेगा?

शोषण की व्यर्थ कल्पना

स्वामी जी ने कन्या आदि को ऋत्विक् कर्म का अनधिकार है, इसमें विद्यार्थी पक्ष से निम्न हेतु भी दिये हैं-

१. पिता के उपदेश में यज्ञ करने को तो कहा गया है............ यज्ञ कराने का कोई आदेश नहीं है।

२. ब्रह्मचारी को रात्रि के समय बाहर गाँव में रहना भी निषेध है।

३. बाहिर जाने से विद्यार्थी के अध्ययन में बाधा उत्पन्न होती है संस्थाएं इस तरह से विद्यार्थियों का शोषण करती हैं, आदि।

पृ. ६।।

४. विद्यार्थियों को आमन्त्रित कर यज्ञ कराने से उन विद्वानों की उपेक्षा व तिरस्कार है, जिनकी यही आजीविका है।

पृ. ६।।

प्रत्यु.

क. स्वामी जी के कथनानुसार पिता द्वारा यज्ञ करने का ही आदेश होने से विद्यार्थी को यज्ञ नहीं कराना चाहिए, तो और भी जो पिता

ने निर्देश नहीं दिए हैं, वे उसे नहीं करने चाहिए। जैसे पिता ने आचार्य को भोजन कराने का उपदेश नहीं दिया है फिर तो भोजन आचार्य को नहीं कराना चाहिए, केवल स्वतः ही खाना चाहिए।

ख. महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश में **'जब भ्रमण करने को जाएं तब उनके साथ अध्यापक रहें',** पृ. ३६ यह लिखा है, इससे प्रतीत होता है कि आचार्य के साथ बाहिर जाने में बाध्यता नहीं है। रही बात अध्ययन में बाधा की, स्वामी जी को विदित होवे, पहले तो उनका अपेक्षित अध्ययन करा कर ही हम बाहिर ले जाते हैं, अपवाद समय में अपने साथ रखकर पूर्ण करते हैं। जो भी बालिकायें हम सबके साथ बाहिर जाती हैं वे सभी सर्वदा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होती हैं। **पाणिनि कन्या महाविद्यालय** का तो रिकॉर्ड बना हुआ है, कि सभी ब्रह्मचारिणियाँ प्रथम श्रेणी से ही उत्तीर्ण होती हैं।

हमारे इस तथ्य की चाहें तो विश्वविद्यालय में गुप्त रूप से जाँच करा सकते हैं, अपवाद की सम्भावना सर्वत्र है, अनुत्तीर्ण का न आज प्रश्न है, न था, न कभी होगा।

ग. शोषण भी वहाँ होता है, जहाँ आचार्य की स्वयं में न्यूनता होती है, या विद्यार्थी कहीं से हड़पकर लाये जाते हैं। बाहिर ले जाकर कन्याओं का विकास किया जाता है, अपने निरीक्षण में रखते हुए उन्हें सामाजिक गतिविधियों से परिचित कराना आवश्यक होता है। ब्रह्मचारियों की बात मैं नहीं जानती, पर कन्याओं के पास समय ही कहाँ है, उनके ऊपर माता पिता की सामाजिक बाध्यता होती है, तो वे कैसे दीर्घ समय तक आश्रमों में रहकर लोक व्यवहार सीखेंगी एवं पढ़ी हुई विद्या का प्रकटीकरण सीखेंगी। इन्हीं कारणों से बाहिर ले जाना आवश्यक हैं।

घ. विद्वानों का तिरस्कार व अनादर कन्या आदि के अनधिकार सिद्ध करने से उन विद्वानों को आदर प्राप्त नहीं हो जायेगा। अपितु उन विद्वानों को कन्या, ब्रह्मचारिणी आदि के सदृश विशिष्टता प्राप्त करना ही अपेक्षित होगा।

स्वामी जी का सदुपदेश एवं बाध्यता

१. शान्तिपूर्वक बैठकर कन्याओं का पठन पाठन सुचारु रूप से करना आपका सर्वश्रेष्ठ कार्य है, इस बात से चिन्तित न हों कि धन कहाँ से आयेगा।

पृ. २०॥

२. आप अपने लेख में यह स्वीकारोक्ति लिखतीं कि हम किसी के घर बलात् यज्ञ कराने नहीं जाती हैं। आर्यजन बार-बार हमें लिखकर आमंत्रित करते हैं.......................। लोग बार-बार पत्र लिखकर हमें बाध्य करते हैं कि आपका आना परमावश्यक है इसलिए हमें जाना पड़ता है। आगे ध्यान रखेंगी।

परि.पृ. ७॥

३. एतादृश भाव का २२ अक्टूबर २००४ को एक पोस्टकार्ड पत्र भी मेरे समीप प्रेषित किया है, जिसका आशय है कि हमें ऋत्विक् कर्म का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

प्रत्यु.

क. पठन पाठन की जागरूकता पाणिनि कन्या महाविद्यालय में जितनी रखी जाती है, सम्भवतः अन्यत्र दृष्टिगोचर न हो। **पू. आचार्या डा० प्रज्ञा देवी जी पू. प्राचार्या पं. मेधा देवी** ने इस जागरूकता के लिए अपने को जितना तपाया है विद्वत् समाज उससे अपरिचित नहीं है। विद्यालय की सुयोग्य स्नातिकायें ही इसकी प्रमाणभूत हैं, जो

महन्तों, शंकराचार्य आदियों से एवं आर्यजगत् में भी प्रचलित अमान्य परम्पराओं के निवारण से लोहा लेने में तत्पर रहती हैं।

पठन पाठन की अनिवार्यता के समक्ष मैंने अपने पारिवारिक महोत्सवों में जाना पसन्द नहीं किया, पूर्ण विद्योपरान्त दीक्षान्त के उपरान्त भी माता पिता की रुग्णावस्था में औपचारिकता के अतिरिक्त समय अतिवाहित नहीं किया। हम अपनी गुरु परम्परा से तथा माता पिता के आदर्श से अध्यापन के लिए पूर्ण सचेष्ट रहते हैं। मेरी पू. माता जी का देहावसान हो गया, मेरे पू. पिता जी ने सूचित भी नहीं किया, अध्यापन में बाधा न हो, मात्र एतदर्थ।

ख. बाहिर अर्थ के लिए न हमारी पूजनीया आचार्यायें गयी हैं और न हम सबका यह अर्थ कमाना उद्देश्य है। ईसाई मत पोषक ननों तथा बहुविध आडम्बरों के कारण बाहिर जाना आवश्यक व अनिवार्य है। राष्ट्र की शोचनीय दशा देखकर महर्षि दयानन्द अपने आत्मिक सुख को छोड़कर सामाजिक कार्यों में जुट गये, हम सबका भी जो दयानन्द गोत्रीय हैं उनका समय की पुकार से **"यदर्थं आचार्या आचार्यों वा सूते कालोऽयम् आगतः"** समाज सुधार का कार्य आवश्यक कर्त्तव्य बन गया है। बाहिर आने जाने पर ही **"आयेंगे खत अरब से जिनमें लिखा यह होगा, गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है"** कवि की यह कल्पना सार्थक हो सकेगी।

संस्था संचालन में बाहिर आने जाने से बाधा पड़ती है यह भी ऋत्विक् कर्म अनधिकार में हेतु नहीं है। हमारा परम सौभाग्य है कि हमारे ऊपर प्राचार्या पद को अलंकृत करने वाली **पण्डिता पू. मेधा देवी जी** का वरदहस्त है, जिन्होंने संस्था एवं बालिकाओं के निर्माण में अपने को स्थाणु ही बना दिया है, उनके इस कार्य के लिए विद्यालय परिवार एवं आर्यजगत् सदा ऋणी रहेगा। पाणिनि कन्या महाविद्यालय

का अपना यह वैशिष्ट्य है कि बाहिर आने जाने पर भी अध्ययन अध्यापन में एवं विद्यालय की सुचारुता में राई रत्ती बाधा नहीं आती।

आर्यसमाज का दोष

१. आमन्त्रित करने वाले आर्यसमाज के अधिकारीगण उतने ही दोषी हैं, जितने कि बाहिर जाने वाली संस्थायें।

पृ. ६।।

२. आर्यसमाज में अन्धश्रद्धालु भक्त बहुत हैं। आप घबरायें नहीं, आपका कार्य ऐसे ही चलता रहेगा।

पृ. २२।।

प्रत्यु.

क. स्वामी जी की दृष्टि से कन्याओं द्वारा यज्ञ करवाना, आर्यसमाज का शास्त्रोचित दोष है, अन्धश्रद्धालुता है, तो मैं यही कहना चाहूँगी कि आर्यसमाज को **'नारी उद्धारक आर्यसमाज'** आदि नारे छोड़ देने चाहिए, विशिष्ट बात आर्यसमांज स्वयं जाने।

बलिवैश्वदेव यज्ञ हवन कुण्ड में करने, न करने आदि के सम्बन्ध में अपने यथोचित विचार पूर्व लेख में दे चुकी हूँ जो **"शास्त्रों में यज्ञब्रह्मा कौन"?** शीर्षक से **परोपकारी अंक ६ सितम्बर २००४ पृ. ३४२** पर प्रकाशित हुआ है, उसका पिष्ट पेषण भय से पुनः कथन नहीं किया जा रहा है।

संन्यासियों के ऋत्विक् कर्म विषय में भी पूर्व लेख में कथन हो चुका है। अतः वह भी पुनः नहीं लिखा जा रहा है, पर **"महर्षि ने जो कुछ किया वह अपने सुधारात्मक आन्दोलन के अन्तर्गत किया था, वह उनके साथ है "वृद्धास्ते न विचारणीयचरिताः"** कहकर

स्वामी जी द्वारा संन्यासियों का आत्यन्तिक ऋत्विक् कर्म अनधिकार सिद्ध करना पक्षपात पूर्ण ही होगा।

इसी प्रकार श्वेत वस्त्र का न होना भी संन्यासियों का ऋत्विक् कर्म अनधिकार में हेतु नहीं बन सकता। क्योंकि संन्यासियों के ऋत्विक् कर्म अनधिकार में स्वामी जी ने जो यह प्रमाण दिया है-

काषायवासा यान्कुरुते जपहोमप्रतिग्रहान्।
न तद्देवगमं भवति हव्यकव्येषु यद्धविः।।

बौधा.धर्म.सू. २/८/५।।

यह वचन पौराणिक श्राद्धविधि प्रकरण में उक्त है। जब श्राद्ध विधि ही अवैदिक है, तो उस श्राद्धविधि के कथन भी स्वतः अवैदिक एवं अमान्य हैं।

"अयज्ञियो वाव पुरुषो यावत् असपत्नीकः" यह कथन भी गृहस्थियों के लिए है। इसका तात्पर्य है कि यदि गृहस्थ याज्ञिक बने, तो उसे पत्नी सहित यज्ञ में बैठना चाहिए। न कि यह वचन नैष्ठिक ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियों, वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों के ऋत्विक् कर्म के अनधिकार का ज्ञापक है। इस वचन से ब्रह्मचारिणी आदि का अनधिकार सिद्ध करना भी स्वामी जी का शास्त्रविरुद्ध कथन है।

स्वामी जी ने पुस्तिका में और भी ऐसे हेतु व प्रमाण दिए हैं जिनसे उन्होंने ब्रह्मचारिणी आदि का ऋत्विक् कर्म, अनधिकार सिद्ध किया है। उनका विषय बाह्य आशय का होने के कारण उत्तर देना समुचित नहीं समझा गया है।

इस प्रकार स्वामी जी के **पत्रात्मक उपग्रन्थ का इस 'उत्तरग्रन्थ'** में समुचित समाधान दिया गया है। शेष श्रद्धेय स्वामी जी का चिन्तन है, वे जैसा समझें। पर यह निःसन्देह है कि **ब्रह्मचारिणी, कन्या, युवती आदि द्वारा ऋत्विक् कर्म कराना न वेद विरुद्ध है, न महर्षि के**

विरुद्ध है। अपितु उनसे इस अधिकार को छीनना ही अवैदिक है, यह सुनिश्चित है। उपग्रन्थ के मुख पृष्ठ पर स्वामी जी ने खुला पत्र लिखकर ऋत्विक् कर्म का अनधिकार प्रतिपादित किया है, उससे यही द्योतित होता है कि कन्याओं का ऋत्विक् कर्म कराना कोई अनाचार कर्म हुआ हो, जो इतना दूषित हो कि कहने और सुनने लायक भी नहीं।

मुझे तो महान् आश्चर्य है, स्वामी जी सम्प्रति नवीन-नवीन अपनी अवधारणायें यथा- **लोहे का हवनकुण्ड अशास्त्रीय है, ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना के मन्त्र तथा स्वस्तिवाचनम्, शान्तिकरणम् के मन्त्रों का पाठ यज्ञशाला के उत्तर दिशा में होना चाहिए, नारियों का ऋत्विक् कर्म में अनधिकार है** आदि लिख कर दिग्भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं। यह सम्मान्य विद्वत् प्रवर के लिए शास्त्रीय व व्यावहारिक दृष्टि से कथमपि उचित नहीं है।

किमधिकं विद्वद्वर्येषु

वेद में कन्याओं का ब्रह्मा पद

अगस्त २००४ परोपकारी के अंक ८ में **श्री सत्य प्रकाश जी भृगु मॉरिशस, श्री मामचन्द जी आर्य पिलखुआ, श्री सत्यपाल जी पथिक, आर्य भजनोपदेशक अमृतसर** के निम्न-

१. क्या महिलाओं को पुरोहिताई करने का अधिकार है?

२. प्रातःकाल मन्दिर में अग्निहोत्र के पश्चात् खील, गुड़; शक्कर आदि लेकर इसी अग्निहोत्र की अग्नि में बलिवैश्वदेव के मन्त्रों से आहुतियाँ देकर पुरोहित यजमान समझते हैं कि हमारा बलिवैश्वदेव यज्ञ भी पूरा हो गया तो क्या यह ठीक है?

३. मन्त्रों की विनियोग प्रक्रिया किस प्रकार की है?

४. १६ शृंगार ऐसा विचार कब और कैसे प्रचलित हुआ? क्या गृह्य सूत्रों या अन्य प्राचीन ग्रन्थों में इस विषय पर कोई संकेत मिलता है?

इन चार प्रश्नों के आर्य जगत् के सम्मान्य **स्वामी मुनीश्वरानन्द जी सरस्वती त्रिवेद तीर्थ** द्वारा जो समाधान दिए गए हैं, उन समाधानों में प्रथम समाधान वेद विरुद्ध तथा जैमिनि आदि महर्षियों के मन्तव्य से नितान्त विपरीत है। इस समाधान की वेदादि शास्त्रों द्वारा पड़ताल करना बहुत आवश्यक है।

समाधान पड़ताल

श्री सत्य प्रकाश जी भृगु मॉरिशस की 'क्या महिलाओं को पुरोहिताई करने का अधिकार है?' इस शंका का समाधान कर्मकाण्डवित् वयोवृद्ध सम्माननीय **स्वामी मुनीश्वरानन्द जी सरस्वती त्रिवेद तीर्थ** ने इन शब्दों में किया है-

'ऋत्विक्कर्म अर्थात् यज्ञों में ब्रह्मा आदि ऋत्विक् बनना, विभिन्न संस्कारों का कराना, वानप्रस्थ प्रवेश तथा संन्यास महिलाओं के लिए वर्जित है।'

पुनः अपने समाधान के सारांश रूप में लिखा है-

'महिलाओं, गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों व ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थ तथा सन्यासियों का ऋत्विक् कर्म में अधिकार नहीं है।'

अपने कथन की पुष्टि में स्वामी महाभाग ने मनुस्मृति आदि के निम्न श्लोक दिए हैं-

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा।।

मनु. ११/३६।।

होता मेधातिथिः न स्त्रीणामार्त्विज्यं संभवः।
अग्निहोत्रग्रहणं सर्वकर्मणां होतृग्रहणं च
सर्वऋत्विजाम् प्रदर्शनार्थम्।।

(पता नहीं दिया)

इन उद्धरणों के पश्चात् पुनः लिखा-

मनुस्मृति के दोनों श्लोकों के अनुसार गुरूकुलों के ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, कन्याओं तथा अन्य विदुषी महिलाओं का ऋत्विक् कर्म निषिद्ध है, वर्जित है।

इतना ही नहीं नारियों के ब्रह्मा आदि बनने पर तथा उनके द्वारा यज्ञ कराने पर जो दोष होगा, उसके परिणाम की पुष्टि में मनुस्मृति का प्रमाण प्रस्तुत किया है-

नरके हि पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्य तत्।
तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः।।

मनु. ११/३७।।

अर्थात् स्वामी जी की दृष्टि में कन्या आदि ब्रह्मा और वरण करने वाले यजमान दोनों नरक को प्राप्त होते हैं। अतः उन्होंने स्पष्ट लिखा है- ऋत्विक्

कर्म करने का अधिकार केवल गृहस्थ विद्वान् को ही है।

स्वामी जी के समाधानों पर कुछ लिखने से पूर्व यह अवश्य लिखना चाहूँगी, कि 'नारियों द्वारा यज्ञ करने कराने पर उन्हें और यजमान को नरक प्राप्त होगा' उनका यह प्रलाप पौराणिकों के **'अष्टवर्षा भवेद् गौरी'** आदि आलाप के सदृश ही है, वे उनसे भिन्न नहीं हैं। तभी तो प्रक्षिप्त श्लोकों को लिख मारा है। यदि ये श्लोक प्रमाण माने जायेंगे तो फिर मृतक श्राद्ध, मांस भक्षण, जन्मना वर्णव्यवस्था, नारियों को वेदाध्ययन का अनधिकार आदि प्रसंग भी प्रमाण होंगे?

सर्वप्रथम तो यह जान लेना आवश्यक है कि स्मृतियां तभी प्रमाण हो सकती हैं, जब वे वेदानुकूल हों, जैसा कि जैमिनि महर्षि ने सुस्पष्ट लिखा है-

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यात् असति ह्यनुमानम्।

मीमा.द. १/३/३।।

अर्थात् श्रुति से विरोध होने पर स्मृति उपेक्षणीय होती है, विरोध न होने पर स्मृति का ग्रहण किया जाता है।

मनु महाराज ने भी स्वयं लिखा है कि वेद बाह्य स्मृतियों का प्रामाण्य नहीं हो सकता-

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठाः हि ताः स्मृताः।।
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च।।

मनु. १२/९५. ९६।।

अर्थात् जो वेदबाह्य स्मृतियाँ हैं और जो कुदृष्टियाँ हैं वे सभी निष्फल हैं क्योंकि वे अन्धकार में ले जाने वाली हैं। वेद से भिन्न अन्यमूलक जो ग्रन्थ हैं वे उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं। वे अर्वाक् काल के होने से निष्फल और असत्य हैं। अतः स्पष्ट हुआ जो वेदानुकूल ग्रन्थ या वाक्य हैं वे ही प्रामाणिक हैं।

अब देखना यह है कि वेद में कन्याओं, ब्रह्मचारिणियों, ब्रह्मचारियों तथा अन्य विदुषी महिलाओं को यज्ञ करने कराने का अधिकार है या नहीं?

'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ' ऋ० ८/२३/१६, यह मन्त्र तो सुस्पष्ट ही नारियों को ब्रह्मा बनने का निर्देश कर रहा है, इसके अतिरिक्त बहुत से मन्त्र हैं, जो कन्याओं व युवतियों को यज्ञ करने का पूर्ण अधिकार देते हैं।

ब्रह्मचारिणी कन्या का यज्ञाधिकार

तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि।
अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम्।

अथर्व. १०/४/२४।।

अथर्ववेदीय इस मन्त्र में **'कन्या'** शब्द के साथ आया हुआ **'घृताची'** शब्द भलीभांति बता रहा है कि नारी जाति कन्यावस्था से ही यज्ञ की पूर्ण अधिकारिणी है। 'घृताची' शब्द का अर्थ है- **घृतेन अंचति इति घृताची** अर्थात् जो घृत से अंचन करती है, पूजन करती है = आहुति देती है वह घृताची है **(घृ क्षरणदीप्त्योः, अंचुगतिपूजनयोः)**।

मन्त्रार्थ हुआ- **कन्या** = कन्या, **तौदी** = वृद्धि, बलयुक्ता (**तु गतिवृद्धिहिंसासु**, सौत्रः, **बाहुलकात् द प्रत्ययः = तोदः, अण् ङीप् = तौदी**), **नाम** = नाम वाली, **असि** = है, और वह कन्या, **घृताची नाम** = घृत से अंचन करने वाली अर्थात् आहुति देने वाली इस नाम वाली, **असि** = है, उस, **ते** = तुझ कन्या के, **विषदूषणम्** = विष नाशक, **अधस्पदेन** = नीचे करने वाले गुण द्वारा, **पदम** = गति को, ज्ञान को **(पद गतौ), आ ददे** = ग्रहण करता हूँ, मानता हूँ।

तात्पर्य हुआ कन्या बलवती होती है, आहुति द्वारा सबको गति देती है एवं अन्यों के विष = दूषण को दूर कर सुपथ बताती है।

त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम्।

ऋ. ७/३४/६।।

महर्षि दयानन्द ने इस सूक्त का **देवता कन्या माना** है, तदनु अर्थ हुआ- हे कन्याओ! जैसे **जनाय** = जन हित के लिए राजा, **समत्सु** = संग्राम में, **वीरम्** = योद्धाओं को प्रेरणा देता है, वैसे **त्मना** = अपने आप, **केतुम्** = बुद्धि को (**केतुरिति प्रज्ञा नाम,** निघ. ३/९), **दधात** = धारण करो, और **यज्ञम्** = अग्निहोत्र आदि कर्मों को, **हिनोत** = बढ़ाओ।

मन्त्र से सुस्पष्ट है कि कन्यायें यज्ञ, अग्निहोत्र आदि कर्मकाण्ड के कर्मों को करने कराने वाली होती हैं तभी तो **'यज्ञं हिनोत'** आदिष्ट है, अन्यथा स्वामी मुनीश्वरानन्द जी के कथनानुसार कन्यायें नरक बढ़ाने वाली होतीं तो **'नरकं हिनोत'** निर्दिष्ट होता। सुधी जन किंचित् विचारें।

ब्रह्मचारिणी युवति का यज्ञाधिकार

एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम्।।

ऋ. ७/८०/२।।

अर्थात् **एषा स्या** = यह, वह **उषाः** = दीप्तिमती, कान्तियुक्त (**उषा वष्टेः कान्तिकर्मणः**, निरु. १२/१/२), **अह्रयाणा** = अलज्जित, श्रेष्ठ कर्मों वाली (**अह्रयाणोऽह्रीतयानः**, निरु. ५/३/५५), **युवतिः** = प्राप्त यौवना, **नव्यम्** = नवीन, **आयुः** = आयु को, **दधाना** = धारण करती हुई, **गूढ्वी** = गुह्य गुणों वाली, **तमः** = अन्धकार को, अज्ञान को, **ज्योतिषा** = ज्ञान, प्रकाश से, **अबोधि** = ज्ञात कर लेती है, और **अग्रे** = अग्रणी होकर, **सूर्यम्** = परमात्मा को (**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च** यजु. ७/४२), **यज्ञम् अग्निम्** = यज्ञ और अग्नि को, **एति** = प्राप्त होती है, सम्पादित करती है। इन कर्मों की अपूर्णता को, दोषों को, **प्र अचिकितत्** = दूर करती है (**कित निवासे रोगापनयने च**)।

तात्पर्य हुआ युवती वह नारी है, जो ज्ञान से सम्पन्न होकर अज्ञान को हटाती है तथा अपने ज्ञान बल से परमात्मा के सान्निध्य को प्राप्त करती है

और यज्ञ आदि कर्मों को सम्पन्न करती हुई उनकी त्रुटियों को दूर करती है।

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।

अथर्व. ६/१२२/५।।

मन्त्र का **'योषितः'** शब्द युवती नारी का वाचक है और उसके साथ आया हुआ **'यज्ञियाः'** शब्द युवती के यज्ञाधिकार को प्रकट कर रहा है। **यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ** पा. ५/१/७० से निष्पन्न **यज्ञियाः** शब्द का अर्थ है - **यज्ञकर्म अर्हतीति यज्ञिया** अर्थात् जो यज्ञ कर्म को करने में योग्य हो। इस प्रकार किसी के लाख प्रयत्न करने पर भी नारी को यज्ञाधिकार से नहीं रोका जा सकता।

मन्त्रार्थ हुआ- **शुद्धाः** = आभ्यन्तर शुद्ध, **पूताः** = बाह्याचार शुद्ध, **यज्ञियाः** = यज्ञ कर्म करने कराने वाली, **इमाः योषितः** = इन कर्तव्याकर्तव्य को जानने वाली युवतियों को, **ब्रह्मणाम्** = ब्रह्म ज्ञानियों के, **हस्तेषु** = ग्रहण, विसर्जन गुण में अर्थात् विज्ञान बल में, **प्रपृथक्** = विस्तार से (**पृथु विस्तारे**), **सादयामि** = रखता हूँ।

तात्पर्य हुआ - शुद्ध, पवित्र, यज्ञ करने कराने वाली नारियों में ज्ञानियों के सदृश परमात्मा ने विज्ञान बल रखा हुआ है।

वेद के अनुसार ही दर्शनाचार्यों एवं श्रौत सूत्राचार्यों ने भी नारियों का यज्ञाधिकार प्रतिपादित किया है। तथाहि-

'स्वर्गकामो ज्योतिष्टोमेन यजेत'।

आप.श्रौ. १०/२/१।।

अर्थात् स्वर्ग कामना वाला ज्योतिष्टोम यज्ञ करे।

आदि वाक्यों में **'स्वर्गकामः'** ऐसा पुल्लिंग निर्देश देख पुरुष को ही यज्ञ कर्म करने कराने का अधिकार है, ऐसा सन्देह प्राप्त हुआ, तब उसकी निवृत्ति करते हुए जैमिनि महर्षि लिखते हैं -

जातिं तु बादरायणोऽविशेषात् तस्मात्स्त्र्यपि प्रतीयेत, जात्यर्थस्याविशिष्टत्वात्।

मीमा.द. ६/१/८।।

सूत्र में 'तु' शब्द पुमान् के यज्ञाधिकार की निवृत्ति के लिए है। इस प्रकार सूत्रार्थ हुआ -

बादरायणः = बादरायण आचार्य, **अविशेषात्** = स्वर्ग की इच्छा सामान्यरूप से स्त्री और पुरुष दोनों में होने से, **जातिम्** = मनुष्य जाति को यज्ञ कर्म में अधिकृत मानते हैं, **तस्मात्** = अतः, **स्त्री** = स्त्री, **अपि** = भी, **प्रतीयेत** = यज्ञ कर्म में अधिकृत मानी जाए, **जात्यर्थस्य** = जातिरूप अर्थ के, **अविशिष्टत्वात्** = सामान्य होने से ।

निष्कर्ष हुआ कि **'स्वर्गकामः'** शब्द में जो प्रथमा विभक्ति है वह स्वर्गकामत्वरूप प्रातिपदिकार्थ में विहित है, पुंस्त्व में नहीं। अतः शब्द में पुमर्थ प्रतीत होते हुए भी स्त्री को यज्ञाधिकार से निवृत्त करने में असमर्थ है।

यहाँ शबर स्वामी का कथन भी द्रष्टव्य है-

स्वर्गे कामो यस्य, तमेष लक्षयति शब्दः। तेन लक्षणेन अधिकृतो यजेत इति शब्देन उच्यते। तच्च लक्षणम् अविशिष्टं स्त्रियां पुंसि च। तस्मात् शब्देन उभावपि स्त्रीपुंसौ अधिकृतौ इति गम्यते। ....। पुंवचनत्वात् स्त्री निवृत्तावशक्तिः।

शा.भा.मी. ६/१/८।।

अर्थात् स्वर्ग के विषय में कामना जिसकी है उसको यह शब्द लक्षित करता है और स्वर्ग में जिसकी कामना है, इस लक्षण से विशिष्ट **'यजेत'** शब्द से कहा जाता है। वह लक्षण स्त्री और पुरुष में समान है, अतः **'स्वर्गकामः' शब्द से स्त्री पुरुष दोनों अधिकृत हैं,** ऐसा जाना जाता है। पुल्लिंग निर्दिष्ट शब्द में स्त्री की निवृत्ति में शक्ति नहीं है।

कात्यायन श्रौतसूत्रकार ने भी पुरुष के सदृश नारियों का यज्ञाधिकार

प्रतिपादित किया है-

स्त्री चाऽविशेषात्।

कात्या.श्रौ. १/१/७।।

अर्थात् आधान वाक्यों में पुंस्त्वरूप लिंग की **विशेषता** = प्रधानता न होने से स्त्री का भी यज्ञ कर्म में अधिकार है।

तथा च कात्यायन ने यज्ञ के अनधिकारियों की गणना में स्त्री की गणना नहीं की है, यथा-

अंगहीनाऽश्रोत्रियषण्ढशूद्रवर्जम्।

कात्या.श्रौ. १/१/५।।

अर्थात् अन्ध, बधिरादि अंगहीन, अनधीत वेद, नपुंसक और शूद्र को यज्ञ का अधिकार नहीं है।

इस प्रकार वेद, दर्शन तथा श्रौत ग्रन्थों की दृष्टि में नारी जाति कन्या, युवति, ब्रह्मचारिणी किसी भी रूप में हो उसे यज्ञ कर्म करने और कराने का पूर्ण अधिकार है। वेद, दर्शन आदि प्रमाणों के समक्ष कन्या, युवति आदि के यज्ञाधिकार को वर्जित करने वाले मनुस्मृति आदि के कथन सर्वथा अप्रामाणिक है। वेद विरुद्ध होने से सर्वथा उपेक्षणीय हैं, त्याज्य हैं।

जैमिनि महर्षि ने भी अविद्वान् को ही यज्ञाधिकार से वंचित किया है, स्त्रियों को नहीं-

ज्ञाते च वाचनं न ह्यविद्वान् विहितोऽस्ति।

मीमा.द. ३/८/१८।।

अर्थात् विद्वान् ही मन्त्र पढ़ सकता है, अतः अज्ञ पुरुष यज्ञकर्म में अनधिकृत है।

इतना ही नहीं, निर्णय सिन्धु के तृतीय परिच्छेद में पृ. ४६३ पर श्री कमलाकर भट्ट ने हारीत के वचन को उद्धृत करते हुए लिखा है-

द्विविधाः स्त्रियः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनाम् उपनयनम्

अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्ष्यचर्येति।

अर्थात् ब्रह्मवादिनी और सद्योवधु = जिनका शीघ्र विवाह हो जाता है, ऐसी दो प्रकार की स्त्रियाँ होती हैं। उनमें ब्रह्मवादिनियों के उपनयन, अग्नि का समिन्धन = अग्निहोत्र कर्म तथा वेदाध्ययन आदि कर्म होते हैं।

इन सब आर्ष प्रमाणों के होते हुए धूर्त्त चेष्टित वाक्यों को उद्धृत करना, उन्हें प्रमाण मानना मनुष्य को शोभा नहीं देता।

हम सबके वन्दनीय स्वामी जी ने वेदादि शास्त्रों के वचनों को ओझल रखते हुए - ''यदि कोई अनभिज्ञ व्यक्ति इन कन्यादिकों को ऋत्विक् वरण कर यज्ञ करायेगा तो उसका परिणाम **नरके हि पतन्त्येते.** मनु के श्लोकानुसार नरक में जाएगा'' यह जो नरक में जाने का टोटका छोड़ा है यह कम चिन्तनीय नहीं है। आर्यजगत् के वयोवृद्ध संन्यासी ऐसे प्रक्षिप्त श्लोकों को, वचनों को उद्धृत कर सकते हैं यह आश्चर्य ही नहीं, उनकी विकृत, अनुदार मानसिकता का भी द्योतक है।

नरक का भय दिखाने वाले स्वामी महाभाग से ही पूछना चाहती हूँ, आखिर नरक कौन सी बला है? अच्छा होता उसे भी बता देते, उसे क्यों छोड़ दिया? वाह रे नरक का भूत! क्या उन्हें स्वामी दयानन्दोक्त स्वर्ग की परिभाषा ज्ञात नहीं? महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है- **सुख विशेष स्वर्ग और विषयवासनाओं में फंसकर दुःख भोगना नरक कहाता है, स्वः = सुख का नाम है।**

सत्या.नव.समु.,पृ० २३७।।

नम्र निवेदन है कि विज्ञान के युग में स्वामी जी नरक का भय अपने समीप ही रखें। यदि कन्याओं के यज्ञ करने कराने से नरक ही होना था तो **'गौरी मिमाय सलिलानि तक्षति.** ऋ. १/१६४/४१ इस मन्त्र के **'नवपदी'** पद का जो **''चतुर्वेदोपवेदव्याकरणादिशिक्षोपयुक्ता''** महर्षि दयानन्द ने वेदभाष्य में अर्थ किया है तथा भावार्थ में लिखा है-

जो स्त्री समस्त सांगोपांग वेदों को पढ़के पढ़ाती हैं वे सब मनुष्यों की उन्नति करती हैं, यह वे क्यों लिखते?

किंचित् विचार करें, महर्षि ने **सांग** = शिक्षा, व्याकरण निरुक्त, ज्योतिष, छन्द, **कल्प** = श्रौत ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त करने का संकेत किया है। उस सांग ज्ञान में श्रौत = कर्मकाण्ड का ज्ञान भी आ गया। और यह ज्ञान **'नारी'** कन्या और युवती रूप में प्राप्त करती है। इतना ही नहीं उस ज्ञान की शिक्षिका आचार्या होती है, वह ब्रह्मचारिणी भी हो सकती है। पुनः कैसे ब्रह्मचारिणियों को और ब्रह्मचारियों को यज्ञ कराने का अनधिकार सिद्ध किया जा सकता है?

साथ ही यह भी विचारणीय है, गुरुकुलों में पढ़ने वाले ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियों का उपनयन संस्कार भी आचार्य या आचार्या ही करते कराते हैं, क्या उस समय गुरुकुल में संस्कार कराने के लिए किसी गृहस्थी को बुलाया जाएगा? यदि हाँ तो उस संस्कार के समय किये जाने वाले कृत्य तथा प्रतिज्ञाएं कहाँ जाकर संगत होंगी?

अतः निस्सन्देह कर्मकाण्ड करने कराने का कन्या, युवती, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियों आदि सभी को पूर्ण अधिकार है। यदि नरक की बात होती तो सांग विद्या के अन्तर्गत श्रौतग्रन्थों का गुरुकुल में पठन-पाठन विहित न किया जाता।

इस प्रकार ऋत्विक् कर्म को जानने वाली कन्या, ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी, संन्यासी सभी को समान रूप से पुरोहित बनने का अधिकार है। महर्षि दयानन्द की जीवनी में बहुधा आता है कि उन्होंने यज्ञ करवाकर यज्ञोपवीत धारण कराये, अतः संन्यासियों को भी इस कर्म से वंचित नहीं किया जा सकता।

हाँ! संन्यासियों को ही ऋत्विक् बनाने या बनने का दुराग्रह उचित नहीं।

पुरोहित या ब्रह्मा की योग्यता में कन्यात्व या ब्रह्मचारीत्व आदि परिवेश बाधक नहीं है, अज्ञान ही मात्र बाधक हैं। जातकर्म संस्कार में महर्षि ने गृहस्थ पुरोहित की जो बात लिखी है उससे यह नहीं निकाला जा सकता कि अन्यों का पौरोहित्य वर्जित है। महर्षि के कथन का वहाँ यही अभिप्राय है कि यदि गृहस्थ पुरोहित हो तो तत्तत् गुणों से युक्त होवे, क्योंकि अन्यों की अपेक्षा प्रायः गृहस्थ व्यक्ति स्वसंबन्ध केन्द्रित होता है, और अपवाद किसी भी आश्रम में संभव है।

इस प्रकार **कन्या, युवती, ब्रह्मचारी, आदि द्वारा ऋत्विक् कर्म कराना वेदसम्मत है शास्त्रोक्त है, नरक पहुंचाने वाला नहीं।**

समाधाता महाभाग से मुझे यह भी प्रष्टव्य है कि यदि ब्रह्मचारिणी विदुषी महिलाओं द्वारा यज्ञ कराने पर नरक प्राप्त होता है, तो आप ही बतायें, कि **पाणिनि कन्या महाविद्यालय** की संस्थापिका, वर्त्तमान युग की कर्मकाण्डवित् प्रथम महिला यज्ञ ब्रह्मा **पू० आचार्या डा० प्रज्ञा देवी जी** ने संस्कार तथा वेद पारायण आदि यज्ञ कर्म कराने में अनेकों स्थानों पर यज्ञ ब्रह्मा पद को अलंकृत किया। सम्प्रति उनकी अनुजा **पू० आचार्या पं० मेधा देवी जी** तथा **उनकी शिष्याएँ** कर्मकाण्ड करा रही हैं। तो कहाँ-कहाँ नरक का साम्राज्य हुआ और वर्तमान में कहाँ-कहाँ नरक नजर आ रहा है?

गत वर्ष सन् २००३ सम्भवतः जून मास में आप वाराणसी पधारे, उस समय आपने **पू० आचार्या पं० मेधा देवी जी को** तथा **मुझे** अपने निवास पर बुलाया और कर्मकाण्ड विषयक कई रहस्य बतलाये। तभी आपने पू० आचार्या डा० प्रज्ञा देवी जी का एक संस्मरण सुनाया कि **मैंने प्रज्ञा देवी जी को विवाह की परिक्रमा तथा सप्तपदी की विधि दो गाजरों को पति-पत्नी बनाकर समझायी। पश्चात् उन गाजरों को प्रज्ञा देवी ने खा लिया। मैंने कहा - प्रज्ञा तुमने तो वर वधू ही खा लिये।** इस संस्मरण को उद्धृत करने में मेरी यही जिज्ञासा है कि जब ब्रह्मचारिणियों द्वारा यज्ञ कराने और करवाने से

नरक होता है, तब क्यों कर उन ब्रह्मचारिणी विदुषी महिला पू० आचार्या जी को तथा हमें आपने विवाह संस्कार आदि संस्कारों के विधि विधानों को बताया? क्या केवल शब्द ज्ञान के लिए? अरे! उन विधियों की शिक्षा की सार्थकता तो पुरोहित, ब्रह्मा आदि बनने पर ही सम्भव है। अब आप स्वयं समझें, **'नरक प्राप्त होता है', आपके इस कथन का क्या और कितना औचित्य है!**

मेरी दृष्टि में तो नारियों के यज्ञ ब्रह्मा बनने पर नरक प्राप्ति का कथन वेद विरुद्ध, अशास्त्रीय तथा नारियों के प्रति विद्यमान रही कुण्ठित, संकुचित दुर्भावना का ही परिणाम है, जिसे शास्त्रविदों द्वारा कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता।

ब्रह्मा वा ऋत्विजां भिषक्तमः तद्य एव त्विजां भिषक्तमः तेनैव एनम् एतत् यज्ञं भिषज्यति।

शत. ब्रा. १४/२/२/१६।।

अर्थात् ब्रह्मा ऋत्विजों का उत्तम भिषक् वा वैद्य है। जो ऋत्विजों में सबसे बड़ा वैद्य है, उसी के द्वारा यज्ञ की चिकित्सा करायी जाती है। शतपथ के इस वचन से स्पष्ट है कि ब्रह्मा वह ही करने योग्य है जो ऋत्विजों में सर्वोत्तम ज्ञान वाला हो। इस अवस्था में वेद मन्त्रों द्वारा कन्याओं का वेदाध्ययन सिद्ध हो जाने पर उनका ऋत्विक् कर्म यानी ब्रह्मत्व अबाधित है।

शास्त्रों में यज्ञ ब्रह्मा कौन?

कर्मकाण्ड मनुष्य जीवन का वह अभिन्न अंग है जिसके द्वारा मनुष्य छल, कपट, परिग्रह, विघटन, अनुपकार, स्वार्थ आदि सामाजिक, पारिवारिक एवं वैयक्तिक दोषों से मुक्त होने के लिए सायं प्रातः अग्नि को साक्षी कर अपने मानस को, संकल्प को पुनः पुनः पुनर्जीवित करता है, निश्चय करता है।

अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त जितने भी यज्ञ यागादि कर्म हैं, वे जरामर्य सत्र कहे गये हैं। इनका विधि विधान, अनुष्ठान वैज्ञानिकता से ओत प्रोत है। यज्ञों की वैज्ञानिकता को जानने वाले ब्रह्मगण, होतृगण, अध्वर्युगण तथा उद्गातृगण होते हैं। इन गणों का समुदाय निम्न प्रकार है-

ब्रह्मगण-	**होतृगण-**
ब्रह्मा	होता
ब्राह्मणाच्छंसी	मैत्रावरुण (प्रशास्ता)
आग्नीध्र (अग्नीत्)	अच्छावाक
पोता	ग्रावस्तुत्

अध्वर्युगण-	**उद्गातृगण-**
अध्वर्यु	उद्गाता
प्रतिप्रस्थाता	प्रस्तोता
नेष्टा	प्रतिहर्त्ता
उन्नेता	सुब्रह्मण्य

इन गणों में प्रधान पद को अलंकृत करने वाले, जो ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु एवं उद्गाता हैं उनके कर्तव्यों को निम्न ऋचा में बताया है-

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः।।

ऋ. १०/७१/११।।

मन्त्र का **'त्व'** पद पृथक् अर्थ वाला है तदनु मन्त्रार्थ हुआ-

त्वः = एक होता, **ऋचाम्** = मन्त्रों की, **पोषम्** = पुष्टि को, **पुपुष्वान् आस्ते** = पोषित करता हुआ बैठता है, अर्थात् वह मन्त्रों का ठीक-ठीक विधि के अनुसार विनियोग करता है, **त्वः** = दूसरा उद्गाता, **शक्वरीषु** = मन्त्रों में साम मन्त्रों का गायन करता है **(शक्वर्य ऋचः, निरु. १/३/७), त्वः** = तृतीय, **ब्रह्मा** = ब्रह्मा, **जातविद्याम्** = त्रुटि होने पर, **वदति** = त्रुटि को बताता है ब्रह्मा **(जाते जाते विद्यां वदति निरु. १/३/७), उ त्वः** = और चतुर्थ अध्वर्यु, **यज्ञस्य** = यज्ञ के, **मात्राम्** = सम्पूर्ण इति कर्त्तव्य को, **विमिमीते** = सम्पादित करता है, आहुति डालता है, जल प्रक्षेपणादि कार्य करता है।

तात्पर्य हुआ होता मन्त्रों का विनियोग करता है, उद्गाता साम गायन करता है, ब्रह्मा त्रुटियों को बताता है तथा अध्वर्यु आहुति प्रदान आदि कार्यों को करता है।

वेद में ब्रह्मा

इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए यास्क ने ब्रह्मा की योग्यता को इन शब्दो में प्रतिपादित किया है-

ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुम् अर्हति, ब्रह्मा परिवृढः श्रुततः।

निरु. १/३/७।।

अर्थात् ब्रह्मा वह है जो सब कुछ जानने में योग्य होता है, ब्रह्मा वह है जो ज्ञान से बड़ा है यानी बहुश्रुत है।

गोपथ, व्याकरण, उपनिषद् आदि आर्ष ग्रन्थों में भी ब्रह्मा किस प्रकार

का होना चाहिए, यह बहुत सुन्दर शब्दों में बताया है-

गोपथ

एष ह वै विद्वान्त्सर्वविद् ब्रह्मा यद्भृग्वंगिरोविद् इति ब्राह्मणम्।

गोप. १/२/१८॥

अर्थात् यही विद्वान् सब जानने वाला ब्रह्मा है, जो प्रकाशमान ज्ञानों का जानने वाला अर्थात् चतुर्वेदी पुरुष है, यह ब्राह्मण वचन है।

सूत्रमिव वा मणाविति तस्मात् य एवं सर्ववित्स्यात् तं ब्रह्माणं कुर्वीत। एष ह वै विद्वान् सर्वविद् ब्रह्मा यद् भृग्वंगिरोवित्, एते ह वा अस्य सर्वस्य शमयितारः पालयितारः।

गोप. १/५/११॥

अर्थात् सूत्र में मणि के समान यज्ञ में याजक लोग हैं, अतः जो ही **सब जानने वाला होवे उसको ब्रह्मा** बनावे।

यही विद्वान् सब जानने वाला ब्रह्मा होवे, जो भृगु **अंगिराओं** = प्रकाशमान ज्ञान वाले चारों वेदों को जानने वाला है।

यह ही = वेदवेत्ता लोग इस सब यज्ञ के शान्ति देने वाले और पालन करने वाले हैं।

गोपथ के इन स्थलों से सुस्पष्ट है ब्रह्मा चतुर्वेदों का ज्ञाता होवे।

उपनिषद्

मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक् कुरूनश्वाभिरक्षत्येवं विद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानं सर्वाश्चार्त्विजोऽभिरक्षति। तस्मात् एवं विदमेव ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं नानेवंविदम्।

छान्दो. ४/१७/१०॥

अर्थात् जैसे कुरू लोगों की उस अकेले वीर ने घोड़ों से रक्षा की थी, वैसे **मननशील ब्रह्मा यद्यपि अकेला ऋत्विक् होता है,** पुनरपि वह यज्ञ की,

यजमान की और अन्य सभी ऋत्विजों की रक्षा करता है, अतः ऐसे जानने वाले ब्रह्मा का ही निर्वाचन करे, ऐसा न जानने वाले को न करे, न करे।

उपनिषद् के वचन में **'मानवो ब्रह्मा'** शब्द आया है जिससे ज्ञात होता है कि **ब्रह्मा को मननशील होना चाहिए।**

व्याकरण

महाभाष्यकार पतंजलि महर्षि ने महाभाष्य में व्याकरणाध्ययन के ५ मुख्य प्रयोजन बताए हैं, वहाँ १३ आनुषंगिक प्रयोजन और दिए हैं जिनमें ७वाँ आनुषंगिक प्रयोजन **'यो वा इमाम्'** है। इस प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए भाष्यकार लिखते हैं-

'यो वा इमां पदशः स्वरशोऽक्षरशो वाचं विदधाति स आर्त्विजीनो भवति। आर्त्विजीनाः स्याम इति अध्येयं व्याकरणम्।

नवा.पृ. ४०।।

अर्थात् जो इस वेदवाणी को पद से, स्वर से यज्ञानुकूल संस्कृत कर लेता है यानी तदनुकूल बोलता है, वह आर्त्विजीन होता है। आर्त्विजीन होवें अतः व्याकरण पढ़ना चाहिए।

महाभाष्यकार के व्याख्यान में आया हुआ **'आर्त्विजीन'** शब्द **ऋत्विजम् अर्हति इति आर्त्विजीनः** = यजमान तथा **ऋत्विक् कर्म अर्हति इति आर्त्विजीनः** = याजक दोनों का वाचक है। याजक वाचक आर्त्विजीन शब्द **यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्म अर्हतीति चोपसंख्यानम्,** पा. ५/१/७८, वार्त्तिक से खञ् प्रत्यय होकर सिद्ध हुआ है। तात्पर्य हुआ याजक = होता, ब्रह्मा आदि वे ही होते हैं जो वेदवाणी के पद, स्वर, अक्षर भली प्रकार जानते हैं।

इस प्रकार वेद तथा गोपथादि ग्रन्थों से सुस्पष्ट हुआ कि ब्रह्मा पद की योग्यता के लिए चारों वेदों का ज्ञान, मननशीलता और पद, अक्षर, स्वर आदि का शुद्ध उच्चारण नितान्त आवश्यक है। जिनमें यह योग्यता होवे,

चाहे वे ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी हों अथवा वे किसी अन्य आश्रमीय हों वे सभी ब्रह्मा पद के अधिकारी हैं। ब्रह्मा पद में आश्रम विशेष अभिप्रेत नहीं है, अपितु योग्यता अभिप्रेत है, अतः ऐसी योग्यता होने पर निःसन्देह होकर इन शास्त्रों के आधार पर ब्रह्मा पद के लिए व्यक्ति का चयन कर लेना चाहिए और पुरोहित तथा ब्रह्मा आदि को भी इन योग्यताओं को प्राप्त करना चाहिए।

खेद है प्राचीन शास्त्रीय प्रमाणों की अवमानना कर श्री स्वामी जी ब्रह्मा पद को एक वर्ग विशेष में रुढ़ करने में लगे हुए हैं। उनकी यह सोच हास्यास्पद है।

अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते इति त्रय्या विद्यया इति ह ब्रूयात्।

ऐ.ब्र. ५/३३;

शत.ब्रा. ११/५/८/७।।

अर्थात् ब्रह्मा कैसे बनता है ऐसा प्रश्न होने पर ऋक्, यजु, साम रूप त्रयी विद्या से ब्रह्मत्व प्राप्त होता है अथवा ज्ञान, कर्म, उपासना रूप त्रिविध विद्या के प्रतिपादक चतुर्वेदों के ज्ञान से ब्रह्मा पद के योग्य बनता है, ऐसा उत्तर देवे।

महिलाओं का वानप्रस्थ तथा संन्यास

नारियों के वानप्रस्थ तथा संन्यास ग्रहण के सम्बन्ध में स्वामी मुनीश्वरानन्द जी सरस्वती का कथन है-

वानप्रस्थ प्रवेश तथा संन्यास महिलाओं के लिए वर्जित है।

परोपकारी, अगस्त २००४ पृ. २६७।।

इस विषय में भी स्वामी जी से यही कहना है कि अपने इस वाक्य के लिखने से पूर्व कम से कम वेद तथा महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों पर ही दृष्टिपात कर लेते। स्वामी जी ने महिलाओं को पुरोहिताई करने का अधिकार है या नहीं इस प्रश्न में, महिलाओं का वानप्रस्थ प्रवेश तथा संन्यास के अधिकारानधिकार को क्यों जोड़ दिया, यह मेरी समझ में नहीं आया? पर जब उन्होंने महिलाओं को वानप्रस्थ तथा संन्यासं ग्रहण करने का निषेध किया ही है, तो उसका समाधान इस प्रकार है-

वानप्रस्थ

महिलाओं का वानप्रस्थ ग्रहण वेद सम्मत है। ऋग्वेद के १०वें मण्डल के १४६वें सूक्त में सुस्पष्ट कथन है कि नारियों को वानप्रस्थ ग्रहण करना चाहिए। इस सूक्त का देवता अरण्यानी है, वहाँ प्रश्नोत्तर के रूप में नारियों के वानप्रस्थ विषय का कथन हुआ है, मन्त्र है-

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दतीइँ।।

ऋ. १०/१४६/११।।

अर्थात् **हे अरण्यानि** = अरण्य में रहने वाले की पत्नि! **या असौ** = जो यह तुम, **अरण्यानि** = जंगलों में, अपने को, **प्र इव नश्यसि** = प्रविष्ट क्यों करती हो, व्याप्त क्यों करती हो (**नशत् इति व्याप्तिकर्मा,** निघ. २/१८),

कथा न = क्यों नहीं, **ग्रामम्** = गाँव को, **पृच्छसि** = पूछती हो, शोभित करती हो (**पृच्छति अर्चतिकर्मा,** निघ. ३/१४), **त्वा** = तुम्हें, **भीः इव** = भय की सी प्रतीति, **न विन्दती** = नहीं होती?

तात्पर्य हुआ हे वन में रहने वाली वानप्रस्थ की पत्नि! तुम इस जंगल में क्यों रहती हो, गांव को क्यों नहीं शोभित करती? क्या तुम्हें भय नहीं लगता? इस भय का प्रश्न करने वाले को उत्तर देती हुई वानप्रस्थ ग्रहण करने वाली नारी कहती है-

गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत्।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते।।

ऋ. १०/१४६/४।।

अर्थात् **अङ्ग** = हे सौम्य! **एषः** = यह ग्वाला, **गाम्** = गौओं को, **आ ह्वयति** = चराकर ले जाने वाला उनको पुकारता है, और **अङ्ग** = हे प्रश्न करने वाले, **एषः** = यह, **दारु** = लकडियों को, **अपावधीत्** = लकड़हारा काटता है, अतः भय किसका है, मैं, **अरण्यान्यां वसन्** = वन में रहती हुई, **सायम्** = रात्रि के समय, **अक्रुक्षत्** = परमात्मा का आह्वान, उसकी स्तुति करती हूँ, **इति मन्यते** = और अपने को धन्य मानती हूँ।

भाव हुआ इस वन में गौ चराने वाले ग्वालों का स्वर सुनाई पड़ता है, लकड़हारे रहते हैं, अतः भय का कोई कार्य नहीं। बस परमात्मा के ध्यान में अपने को धन्य मानती हुई यहाँ रहती हूँ। वेद के इस प्रकरण से नारियों का वानप्रस्थ ग्रहण स्पष्ट है।

महर्षि दयानन्द भी नारियों के वानप्रस्थ का संकेत करते हुए लिखते हैं-

१. **पुत्रों के पास स्त्री को रख वा अपने साथ लेके वन में निवास करे।**

सत्या. पंच. पृ.११५,
तु. संस्का. पृ. ३०१।।

२. अपनी स्त्री के साथ हो, तथापि उससे विषयचेष्टा कुछ न करे।

सत्या. पंच. पृ. ११६।।

३. पश्चात् जब संन्यास ग्रहण की इच्छा हो तब स्त्री को पुत्रों के पास भेज देवे।

सत्या.पंच. पृ.११६।।

इस प्रकार महर्षि के इन वचनों से सिद्ध है कि पुरुषों की भांति महिलाओं को भी वानप्रस्थ ग्रहण का अधिकार है।

संन्यास

महिलाओं का संन्यास ग्रहण भी महर्षि के पूना प्रवचन के निम्न शब्दों से सिद्ध है-

'जिस पुरुष को विषयासक्ति की इच्छा नहीं, इन्द्रियभोगेच्छा नहीं' उसे नया संन्यास लेने की कोई आश्यकता नहीं, किन्तु वह तो स्वयं बना बनाया संन्यासी ही है।

गार्गी ने कभी भी संसार सुख का अनुभव नहीं लिया वह सदा ब्रह्मचारिणी थी। संन्यासियों से बड़े-बड़े लाभ होते हैं, संन्यासियों को शरीर सम्बन्ध मात्र होता है, दूसरे व्यवसाय उन्हें नहीं होते।'

पू.प्र. ४, पृ. ३४।।

महर्षि के दर्पणरूप इन वाक्यों से स्पष्ट है कि जैसे गार्गी ने सीधे ब्रह्मचर्य से संन्यास ग्रहण किया, वैसे सभी नारियों को संन्यास का पूर्ण अधिकार है।

इतिहास भूषिता ब्रह्मवादिनी सुलभा ने भी संन्यास ग्रहण किया था, जिसने जनक महाराज से शास्त्रार्थ किया। वह स्वयं अपना परिचय देते हुए कहती है-

प्रधानो नाम राजर्षिर्व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः।
कुले तस्य समुत्पन्नां सुलभां नाम विद्धि माम्।।
साऽहं तस्मिन् कुले जाता भर्तर्यसति मद्विधे।
विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम्।।

शान्ति. १२/३२०/८१, ८३।।

अर्थात् मैं सुप्रसिद्ध राजर्षि राजा के कुल में उत्पन्न सुलभा हूँ, अपने योग्य पति न मिलने से मैंने गुरुओं से (**विनीता गुरुभिः शिक्षिता,** टी. नीलकण्ठ भावप्रदीप) वेदादि शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके संन्यासाश्रम (**नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यमेवाश्रित्य संन्यासम्,** टी. नीलकण्ठ भावप्रदीप) ग्रहण कर लिया है।

अग्नि पुराण में भी स्त्रियों के संन्यास ग्रहण का वर्णन है-

स्त्रीणां प्रव्रजितानांच करशुल्कं विवर्जयेत्।

अग्नि पु. राज. २३०/२५, पृ.४२६।।

अर्थात् **प्रव्रजितानाम्** = संन्यासिनी स्त्रियों से किसी प्रकार का कर नहीं लेना चाहिए।

इसी प्रकार महाभारत में भी स्त्रियों के संन्यास ग्रहण विषयक प्रमाण हैं, यथा-

वृद्धां प्रव्रजितां चैव तथैव च पतिव्रताम्।
तथा निकृष्टवर्णां च वर्णोत्कृष्टां च वर्जयेत्।।

अनुशा. १३/१०४/३१।।

यह श्लोक भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को आयु वर्धन के लिए दिए गये उपदेश प्रकरण में पठित है, जिसका अर्थ है-

आयु चाहने वाले को वृद्धा, संन्यासिनी, पतिव्रता तथा नीच वर्ण वाली या ऊँच वर्ण वाली किसी भी प्रकार की स्त्री के साथ सम्बन्धों की मर्यादा रखनी चाहिए।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द तथा इतिहास की साक्षियों से ज्ञात होता है कि नारियों को संन्यास ग्रहण का भी निःसन्देह अधिकार है। इसके अतिरिक्त वेद, मनुस्मृति, व्याकरण, रामायण आदि के बहुत से प्रमाण हैं जिनसे नारी का वानप्रस्थ तथा संन्यास ग्रहण सिद्ध होता है।

श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द जी से सविनय कथन है कि वे वानप्रस्थ तथा संन्यास ग्रहण में पुरुष वर्ग की व स्वतः अपनी ही बपौती न मानें। एवं समाज में नारी शोषण के क्रम में वृद्धि न करें।
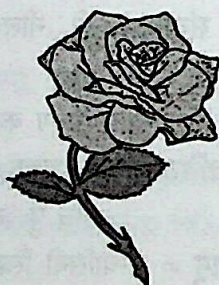
तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्य्यां चरन्तः।
सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्राऽमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा।।

मुण्ड. १/२/११।।

अर्थात् जो शान्त विद्वान् लोग वन में तप धर्मानुष्ठान और सत्य की श्रद्धा करके भिक्षाचरण करते हुए जंगल में वसते हैं, वे जहाँ नाशरहित पूर्ण पुरुष हानि लाभरहित परमात्मा है, वहाँ निर्मल होकर प्राणद्वार से उस परमात्मा को प्राप्त होके आनन्दित हो जाते हैं।

सत्या. पंच.पृ. ११६।।

बलिवैश्वदेव यज्ञ का स्थान

महर्षि दयानन्द ने **बलिवैश्वदेव यज्ञ** सम्पन्न करने की विधि का **सत्यार्थ प्रकाश** तथा **संस्कारविधि** में संकेत किया है। दोनों ग्रन्थों में महर्षि ने इस यज्ञ विषयक निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं-

इन १० मन्त्रों से **घृत मिश्रित भात की, यदि भात न बना हो, तो क्षार और लवणान्न को छोड़कर** जो **कुछ पाक में बना हो,** उसी की १० आहुति करें।

संस्कार.गृहाश्रमविधि पृ. २५८।।

चौथा वैश्वदेव अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने, उसमें से खट्टा, लवणान्न, और क्षार को छोड़ के घृत मिष्टयुक्त अन्न लेकर **चूल्हे से अग्नि अलग धर** निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति और भाग करें।

सत्या.चतु.पृ. ६४।।

यहाँ मनुस्मृति का उद्धरण देकर उसका अर्थ करते हुए महर्षि ने लिखा है-

जो कुछ पाकशाला में भोजनार्थ सिद्ध हो, **उसका दिव्य गुणों के अर्थ उसी पाकाग्नि में** निम्नलिखित मन्त्रों से विधिपूर्वक होम नित्य करे।

सत्या.चतु.पृ. ६४।।

वर्त्तमान समय में बलिवैश्वदेव यज्ञ के सन्दर्भ में बहुत से वाद-विवाद प्रचलित हैं। इन वादों को समाहित करने के लिए समाधान भी बहुत से दिए जाते हैं। सम्प्रति श्री मामचन्द जी के सन्देह का निवारण करते हुए **स्वामी मुनीश्वरानन्द** जी ने भी समाधान देते हुए अन्त में लिखा है-

'अगर आप वैश्वदेव यज्ञ समय पर विधि पूर्वक करना चाहते हैं तो कठिनाई का हल इस प्रकार है- एक छोटा सा ताँबे का कुण्ड लेकर रख

लीजिए। गैस पर भोजन तैयार होने के उपरान्त छोटी-छोटी समिधाओं को गैस में जलाकर छोटे हवन कुण्ड में रख लीजिए। उन जलती हुई समिधाओं पर कुछ छोटी-छोटी समिधायें और रख लीजिये, जब अग्नि अच्छी तरह जलने लगे, तब इसमें पूर्व निर्दिष्ट पक्व पदार्थ की आहुतियाँ वैश्वदेव यज्ञ के मन्त्रों से विधि पूर्ण कर लीजिए'।

इस विषय में मेरा तो यही मन्तव्य है कि महर्षि ने जिस काल में इस चतुर्थ यज्ञ की विधि लिखी तथा उसका प्रचलन किया, **उस समय भोजन चूल्हे पर बनता था एवं भोजन निर्माण और ग्रहण का ८-११ के मध्य का काल होता था।** कहीं-कहीं वर्त्तमान समय में भी यही क्रम दृष्टिगोचर होता है, और **प्रातराश के रूप में दुग्ध, तक्र आदि ही ग्रहण किये जाते थे।** पर आज परिस्थिति भिन्न है, गैस पर भोजन बनता है एवं ८ बजे से पूर्व ही प्रायः प्रातराश में ही अन्नादि का बहुतायत में ग्रहण किया जाता है। तो इस प्रकार इन तथ्यों पर दृष्टि रखते हुए यही उचित है कि जब चूल्हे की अग्नि उपलब्ध ही नहीं है, क्योंकि चूल्हे की अग्नि तो वही होगी, जो उसके जले हुए अंगारे हैं, तब **अर्थाच्च,** मीमा. द. ५/१/२ सूत्र पर आधारित कर्मकाण्डीय **'पाठक्रमात् अर्थक्रमो बलीयान्'** इस न्याय के अनुसार पृथक् से भात बनाकर यज्ञ कुण्ड में ही आहुतियाँ दे देनी चाहिए, इसमें कोई अनौचित्य नहीं है, **क्योंकि आहुतियों का प्रयोजन अन्न में दिव्यगुणों के आधान से है (द्र.सत्या.चतु.पृ. ६४)। वह प्रयोजन पृथक् रूप से अन्न बनाकर उसकी आहुति देने से और उसके ग्रहण करने से भी सिद्ध है।** समय की दृष्टि से ऐसा करने से कोई दोष नजर नहीं आता। देवयज्ञ की पूर्णाहुति करके दूसरा बलिवैश्वदेव यज्ञ उसी अग्नि में किया जा सकता है। देवयज्ञ किये गये हवनकुण्ड में बलिवैश्वदेव यज्ञ करने पर भी पाकशालास्थ वायु की शुद्धि तथा जीवों का प्रत्युपकार भी सिद्ध हो जाता है।

अब रही बात क्या वह प्रयोजन खील आदि की आहुतियों से सिद्ध नहीं हो सकता? सो यह निश्चित जानना चाहिये, कि वह प्रयोजन भात या अन्य पके हुए अन्न से आहुति देने पर ही सिद्ध होगा। यतोहि अन्न ही सामान्यतः हम सबका नित्यप्रति का आहार है। खील, गुड़, शक्कर इत्यादि तो कदाचित् ही ग्रहण किये जाते हैं, वे भी भोजन के रूप में नहीं, स्वाद परिवर्त्तन या औषधि आदि के रूप में गृहीत होते हैं।

इस प्रकार बलिवैश्वदेव यज्ञ सिद्ध करने के लिए जालीदार छन्नियों को बनवाना, या पृथक् रूप से कुण्डों की व्यवस्था करना झमेलेबाजी का ही आडम्बर है। इस यज्ञ का प्रयोजन खाये जाने वाले अन्न में दिव्यता उत्पन्न करने में है, और वह दिव्यता यज्ञ कुण्ड में पके भात आदि अन्न की आहुति देने से भी सिद्ध हो जा रही है, और इस यज्ञ की सुरक्षा भी हो रही है पुनः व्यर्थ वाद-विवाद का विषय बनाना, बखेड़ा खड़ा करना सुधी जनों को शोभा नहीं देता।

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि।।

मनु. ३/६२।।

अर्थात् कुत्ते, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, कौए एवं चींटी आदि कृमियों के लिए भूमि पर अन्न रखना चाहिए।

मन्त्रों की विनियोग प्रक्रिया

श्री सत्यपाल जी पथिक आर्य, भजनोपदेशक, अमृतसर की **'मन्त्रों की विनियोग प्रक्रिया किस प्रकार की है?** इस शंका का सटीक समाधान श्रद्धेय स्वामी मुनीश्वरानन्द जी ने कात्यायन श्रौतसूत्र के आधार पर किया है। विषय की स्पष्टता के लिए यास्क महर्षि का निम्न कथन भी सहायक है-

एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणम् ऋग्यजुर्वा अभिवदतीति च ब्राह्मणम्।

निरु. १/५/१४।।

अर्थात् इसमें ही यज्ञ की समृद्धता है, पूर्णता है कि वह रूप से = विनियोग से की जाती हुई क्रिया से पूर्ण हो, यानी जो कर्म = क्रिया की जा रही है वह ऋक्, यजुः आदि मन्त्रों द्वारा कथित हो, अनूदित हो। यह ब्राह्मण का वचन है।

तात्पर्य हुआ, किया जाता हुआ कर्म मन्त्रार्थ के अनुकूल होना चाहिए। यदि मन्त्र कुछ कहता हो और क्रिया दूसरी हो रही हो तो वह कर्म अग्राह्य और अमान्य होता है। विनियोग में मन्त्रोक्त प्रतिपादित विषय की प्रधानता है, शब्द सामान्य की नहीं। मन्त्र का अर्थ जैसा होगा वैसी ही क्रिया उचित समझी जाएगी। अतः **शन्नो देवी** आदि मन्त्रों को शनिश्चर आदि उतारने चढ़ाने में लगाना विनियोगानभिज्ञ जनों का कार्य है, विनियोग के जानने वालों का नहीं।

सोलह शृंगारों का प्रचलन

'सोलह शृंगार' ऐसा विचार कब और कैसे प्रचलित हुआ? क्या गृह्य सूत्रों वा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में इस विषय पर कोई संकेत मिलता है?

श्री सत्यप्रकाश भृगु, मॉरिशस के इस प्रश्न का समाधान 'पण्डित जी यह सामग्री हमारी दुकान पर नहीं मिलती है इसलिए आप बाजार में अन्य दुकानों पर जाने का कष्ट करें', यह लिखकर छोड़ दिया है। उसका समाधान इस प्रकार है-

मान्य भ्राता भृगु जी मॉरिशस! **१६ शृंगार के विषय में** साहित्यविदों की दृष्टि से यह कहा जा सकता है, कि **शृंगार रस का प्रादुर्भाव मौर्यकालीन चाणक्य से हुआ और भक्तिकाल के पश्चात् आये रीतिकाल में प्रखर हुआ।** यह प्रखरता हिन्दी कवियों ने प्रदान की। विस्तार से इस प्रकार समझा जा सकता है।

सजने-संवरने, सजाने-संवारने के लिए वैदिक साहित्य में **'अलंकार'** शब्द का प्रयोग हुआ है। यह अलंकार व्यक्ति, पदार्थ, वाक्य आदि के सम्बन्ध से कई प्रकार का संभव है, जिसके द्वारा सुन्दर, स्वच्छ समाज व साहित्य की सृष्टि होती है। उपनिषद् ग्रन्थ पर्यन्त प्राचीन संस्कृत साहित्य में जड़-चेतन सम्पूर्ण समाज के सौन्दर्य को निखारने-उभारने के लिए **अलंकार** का ही प्रयोग होता आया है।

परन्तु जो मानवीय अथवा समस्त जैविक उत्पत्ति में, सृष्टि के आदि से ही समाज निर्माण के लिए, विस्तार के लिए वात्सल्य, सहचारिता, सहकारिता, सहधर्मिता रूप से सम्बन्ध बने हुए थे, उन सम्बन्धों में जब स्मृतिग्रन्थों तक आते-आते बदलाव आया अर्थात् उनका उद्देश्य समाज विस्तार व निर्माण न रहा, वे सम्बन्ध वासनात्मक बन गए और अलंकार के

कार्य शृंगार के कार्य कहे गये। **'अल भूषणपर्याप्तिवारणेषु'** धातु से निष्पन्न **'अलम्'** शब्द जो सज्जा-भूषा अर्थ वाला है जिसका **'कार'** शब्द के साथ प्रयोग करने पर **भूषित करना, सजाना अर्थ होता है** उसका स्थान **'शृ हिंसायाम्'** धातु से निष्पन्न **'शृंगार'** शब्द ने ले लिया, जिसका अर्थ है **'शृणाति हिनस्ति इति'** अर्थात् जो दूसरे को हिंसित करता है, उद्वेलित करता है वह। उस बदलाव से ऋषिगण भी अछूते न रहे, परिणाम यह हुआ नृपगण अनेक नारी सम्बन्ध अपनाने लगे, **तब उस सम्बन्ध का नाम ही शृंगार रस हुआ**। यानी नारी सौन्दर्य को ही प्रायः शृंगार रूप से जाना जाने लगा। लौकिक संस्कृत साहित्य तथा हिन्दी साहित्य में नारी के नख शिख पर्यन्त के वर्णन को ही शृंगार समझ लिया गया।

तात्पर्य यह हुआ कि शृंगार प्रेम का पर्याय हो गया, समाज सौष्ठव का नहीं। इस प्रकार साहित्य में शृंगार का स्थायी भाव प्रेम रूप में ही प्रतिपादित है, यानी एक दूसरे की मनःस्थितियों को समझने का नाम शृंगार रस है।

प्रारम्भ में शृंगार रस में एक दूसरे को आकर्षित करने के लिए प्राकृतिक पुष्प, परागादि का ही प्रयोग हुआ, जैसा कि कवि कालिदास, पं० जगन्नाथ आदि के शाकुन्तलम्, शृंगारमीमांसा आदि से स्पष्ट है। अनन्तर रीतिकाल में इसमें महावर, अंजन, मंजन, लेप आदि बहुत से साधन जुड़े। इस प्रसंग में यह माना जा सकता है कि रीतिकाल से पूर्व शृंगार रस कुछ मर्यादा में था।

इस शृंगार का वर्णन सर्वप्रथम **चाणक्य ने वात्स्यायन कामसूत्र** में किया और **महाकवि केशव** ने जो काव्यकला के साथ-साथ कामशास्त्र का भी महापण्डित था, जिसने रसिकप्रिया, शृंगारमंजरी आदि पुस्तकें लिखी हैं, उसने रीतिकाल में शृंगार को खुलकर व्यक्त किया। वैसे तो इस काल के **अमरुक, सेनापति, देव, बेनी, घनानन्द, सुजान, रसनिधि, जायसी** आदि बहुत से

कवि हैं, पर **केशव** इनमें अग्रगणी हैं, क्योंकि साहित्यविदों की दृष्टि से **शृंगार २८ प्रकार** के हैं, यथा-

१. **अंगज,** जिसके **३ प्रकार** हैं-
हाव, भाव, हेला अर्थात् रिझाने की कला।

२. **अयत्नज,** जिसके **७ प्रकार** हैं-
शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य। ये गुण प्रायः नायिकाओं में प्राकृतिक रूप से होते हैं।

३. **यत्नज,** जिसके **१८ प्रकार** हैं-
लीला, विलास, विच्छित्ति, विब्वोक, किलकिंचित्, मोट्टयित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, तपन, विहत, मुग्धता, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित, केलि। दूसरों को आकर्षित करने की कला।

इन **२८ शृंगारों** में से कवि केशव ने **१६ शृंगारों** का ही महती प्रखरता से वर्णन किया है, यह तथ्य कवि के अपने सवैया दोहे से ही सुस्पष्ट है-

सहज सिंगारत सुन्दरी **जदपि सिंगार अपार**
तदपि बखानत सकल कबि, **सोरहई सिंगार**
प्रथम सकल सुचि मंजन अमलबास
जावक सुदेश केशपासनि सुधारिबो
अंगराग भूषन विविध, मुखबास राग
कज्जल कलित, लोल लोचन निहारिबो
बोलनि हँसनि चित्त चातुरी चलनि चारू
पल पल प्रति पतिब्रत परिवारिबो
केशोदास सबिलास करहुं कुंवरि राधे
यहि बिधि सोरह सिंगारन सिंगारिबो

अन्य कवि १६ शृंगारों की गणना निम्न प्रकार से करते हैं-

अंग शुची, मंजन, वसन, मांग, महावर, केश।
तिलक भाल, तिल चिबुक में, भूषण मेंहदी वेश।।
मिस्सी, काजल, अरगजा, वीरी और सुगन्ध।

इस प्रकार समास रूप में यह जाना जा सकता है कि **शृंगार की उत्पत्ति मौर्यकाल से हुई, एवं रीतिकाल में खुलकर वर्णन हुआ। राजाओं तथा समाज में वासना की वृत्ति देखी जाने से ही शृंगार रस ने प्रधानता प्राप्त की, और अलंकार शृंगार कहा गया।** इन १६ शृंगारों का वर्णन काव्यपदी, क्रियाप्रकाश आदि ग्रन्थों में विस्तार से प्राप्त होता है जिसके लेखक महाकवि केशव हैं। गृह्य सूत्रों में इसका उल्लेख नहीं है।
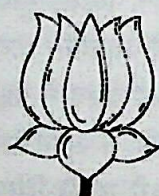
केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।।

भर्तृ.नीति. १६।।

अर्थात् मनुष्य को बाजूबन्द, चन्द्र के समान उज्जवल हार, स्नान, चन्दन आदि का लेप एवं सँवारे हुए केश ही अलंकृत नहीं करते, अपितु परिष्कृत की हुई एक वाणी ही मनुष्य को भली प्रकार अलंकृत करने में समर्थ है क्योंकि अन्य सभी आभूषण नष्ट हो जाते हैं और वाणी रूपी आभूषण सर्वदा विद्यमान रहता है।